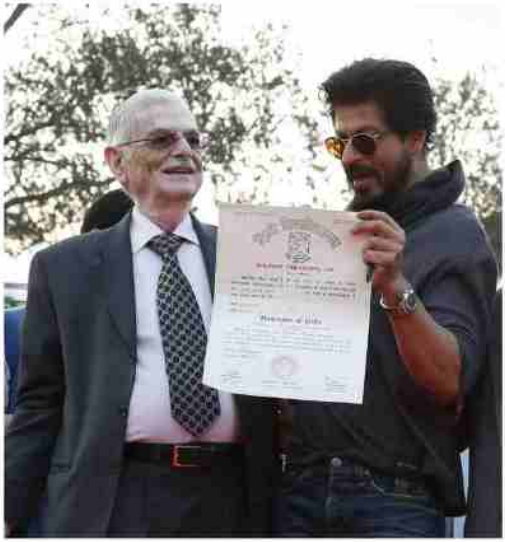

वार्षिक पत्रिका
– 2016 –

हंस

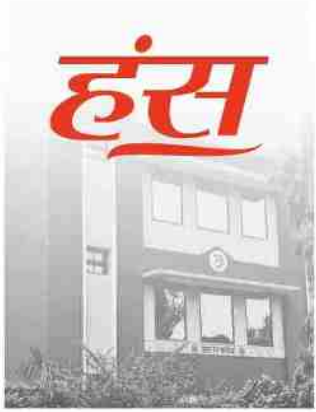

हंसराज कॉलेज
—दिल्ली विश्वविद्यालय—

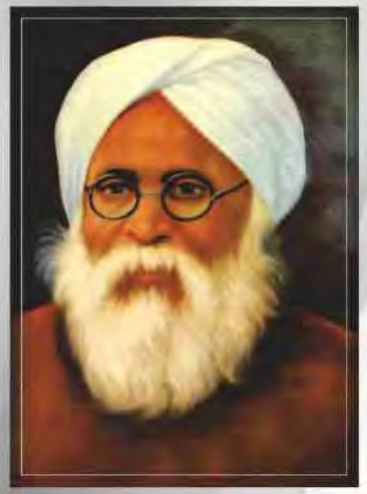

MAHATMA HANSRAJ

(1864-1938)

The college was founded to preserve the memory of Mahatma Hansraj, acknowledged as the founding father of the D.A.V. movement in undivided India. Frail in body but heroic in sprit, Mahatmaji was selflessly dedicated to the course of education. He started his career as the Honorary Founder Headmaster of D.A.V. School, Lahore, in 1886 and over the next 50 years went on to shape the destiny of the D.A.V movement in India.

"Hansraj College has occupied a prestigious place on the educational map of Delhi - many of its students and teacher have figured among the best in the country."

A.B. Vajpayee

Former Prime Minister of India

संदेश

डॉ. रमा
कार्यवाहक प्राचार्या

अपने विद्यार्थियों की रचनात्मकता को दिशा और गति देना किसी भी शिक्षण संस्थान के उद्देश्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होता है। हंसराज कॉलेज अपने विविध अकादमिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के जरिए इस उद्देश्य को प्राप्त करने के प्रयास में सर्वदा तत्पर रहा है। अपनी विविध समितियों के माध्यम से वर्ष भर ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन कर विद्यार्थियों की प्रतिभा, रुचि और कलात्मकता को उपयुक्त मंच प्रदान करने की हमारी कोशिश रहती है। इस वर्ष हमने विविधोन्मुखी कार्यक्रमों की रचना और आयोजन कर इस दिशा में नई ऊँचाई हासिल की है।

अपने विद्यार्थियों के सृजनात्मक लेखन को मंच प्रदान करने के ध्येय से प्रति वर्ष अपनी वर्षिक-पत्रिका 'हंस' का प्रकाशन करना हमारी अकादमिक एवं रचनात्मक गतिविधि का अनिवार्य हिस्सा रहा है। हंस से अपने लेखन की शुरूआत करने वाले विद्यार्थी आगे चलकर मिडिया, साहित्य और कला के क्षेत्र में असीम ऊँचाईयाँ प्राप्त करने में सफल रहे हैं। 'हंस' में हम साहित्य के साथ-साथ चित्रकला और दूसरी कलात्मक विधाओं को भी उपयुक्त स्थान देकर अपने विद्यार्थियों की कलात्मक रुचि और प्रतिभा के परिष्कार का प्रयास करते हैं। विद्यार्थियों की पूरे वर्ष भर की गतिविधियों की चित्रात्मक प्रस्तुति भी 'हंस' को आकर्षक और बहुआयामी बनाती है।

इस वर्ष 'हंस' अपने नए कलेवर एवं तेवर के साथ आपके समक्ष प्रस्तुत हुआ है। इसके लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान देने वाले संपादन मंडल के सभी सदस्यों को मैं हृदय से बधाई देती हूँ। आशा करती हूँ आप सबको उनके ये प्रयास और विद्यार्थियों की रचनात्मक अभिव्यक्तियाँ प्रभावित करेंगी। मैं इस वर्ष के 'हंस' में शामिल सभी विद्यार्थियों की रचनात्मकता की सराहना करते हुए उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

EDITORIAL

S.N. Prasad
Convener, Editorial Board

The job of an editor is akin to that of a gardener who is tasked with collecting the finest specimens from a garden that dazzles the senses with the variety of its efflorescence. It is both difficult and delightful: difficult because the process is one of selection, and as a natural corollary, of exclusion, and delightful because of the opportunity to closely work with some fine creative talents and be a catalyst in their creative process.

This editorial board has tried to reinvigorate Hans - a platform for showcasing the enormous potential in the students and teachers of Hansraj College. And it has indeed been an extremely rewarding experience. We have tried to include in these pages the best that Hansraj has to offer to the world across various genres – from creative, analytical and documentary writings to a photo essay, images, paintings and sketches.

How does one acknowledge the help and support of students, colleagues and associates who have made it possible for us to re-conceptualize and execute this somewhat big and chaotic task of collecting inputs, positioning them inside an organized structure and creating designs that present them differently?

Student contributors and editors as well as contributing colleagues are responsible for most of the text here. Niraj V Murali, Javed and your entire team – you were great! A warm word of appreciation and gratitude for PIXELS, the informal photographic society of Hansraj College for generously contributing their best images. Special thanks to Abhinav, Shivam and Adnan! Dispersed amidst the pages of this and other College publications this year are the creative efforts of many PIXELS members. All image credits go to them – yes ALL! No professional's images figure in any of our publications. This is happening, perhaps, for the first time in the history of Hansraj College!

So flip through the pages and enjoy the creative outburst. See your own life and ideas reflected here and if you like them preserve this volume as a memory of your College life.

(बाएँ से दाएँ पीछे) सुश्री रुचि शर्मा, सुश्री शिवानी मुल्तेजा, डॉ. नृत्य गोपाल शर्मा, डॉ. विजय कुमार मिश्र, श्री अर्नब दासगुप्ता
(बाएँ से दाएँ मध्य) डॉ. राज मोहिनी सागर, डॉ. ब्रह्मप्रकाश, श्री सुशील कुमार गुप्ता, श्री एस. एन. प्रसाद, डॉ. रमा (कार्यसाधक प्राचार्या)
(बाएँ से दाएँ नीचे) मोहम्मद जावेद, दीपक कुमार अग्रवाल, मुस्कान नागपाल, नीरज वी. मुरली

संपादक मंडल

समन्वय

श्री एस. एन. प्रसाद
श्री सुशील कुमार गुप्ता

हिन्दी

डॉ. राज मोहिनी सागर
डॉ. नृत्य गोपाल शर्मा
डॉ. विजय कुमार मिश्र

अंग्रेजी

श्री अर्नब दासगुप्ता
सुश्री शिवानी मुल्तेजा
सुश्री रुचि शर्मा

संस्कृत

डॉ. ब्रह्मप्रकाश
डॉ. रतीश चन्द्र झा

छात्र-संपादक

मोहम्मद जावेद
दीपक कुमार अग्रवाल
मुस्कान नागपाल
नीरज वी. मुरली

-★-

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	शीर्षक / रचनाकार	पृ.सं.
01.	ग़ज़लें / डॉ. आमिर रियाज़	08
02	मेरे प्यारे वतन / डॉ. फ़हरत जहाँ	08
03.	कम्प्यूटर से दूरी क्यों / डॉ. हरमीत कौर	09
04.	नयनों की बोली / ब्रजमोहन	10
05.	कुछ और तुम दे दो... / ब्रजमोहन	10
06.	ख़बर से ख़बर दब जाती ! / ब्रजमोहन	10
07.	मिसाल / प्रभाकर	11
08.	भगत सिंह और आज़ादी / राधिका दत्त	11
09.	भीड़ / सुनीति कौशिक	11
10.	समभाव.... थोड़ा वक्त निकालें हम / प्रशांत जैन	11
11.	कब्रिस्तान / अनुराग त्रिपाठी	12
12.	माँ / पवन कुमार	12
13.	जीवन जननी का / प्रीति मराठा	13
14.	विज्ञान / रंजीत सिंह	13
15.	हमारा समय और हिन्दी उपन्यास / मोहम्मद जावेद	14
16.	बचपन एक सुनहरा पल / पवित्र जोशी	16
17.	आज का लोकतंत्र / हरिकिशोर शर्मा	17
18.	यह मंगलवार को ही क्यों होता है / आकाश कुमार सिंह	19
19.	क्या मैं ग़लती हूँ? / शाज़िया	20
20.	एक सवाल / शाज़िया	20
21.	वर्तमान में भारत की दशा / धर्मेंद्र गुप्ता	20
22.	एक कहानी / योगेश पाण्डेय	21
23.	योगा रूम / मोहम्मद जावेद	22
24.	कि- लिखा जाना था... / मोहम्मद जावेद	23
25.	खेल / आकाश कुमार सिंह	23
26.	बाल शिक्षा / अतुल कुमार शुक्ला	24
27.	नारी शिक्षा / बालकृष्ण झा	25
28.	वो अलविदा / अनुराग झाँब	26
29.	दिल्ली का पहला सफर / पवन कुमार	26
30.	न कोई अंत न प्रारंभ / नीरज	27
31.	बाज़ार / नीरज	27
32.	एक सीख / दीपक अग्रवाल	28
33.	मेरी व्यथा / दीपक अग्रवाल	28
34.	चाहिए / निखिल पाण्डेय	29
35.	तू ही मेरी / अनुराग झाँब	29
36.	अभी भी देर नहीं / अर्पिता अग्रवाल	30
37.	चाह / गोविंद शरण चतुर्वेदी	30
38.	समकालीन समाजिक परिदृश्य और मीडिया / नंद लाल मिश्र	32
39.	शैक्षणिक संस्थानों में सांस्कृतिक गतिविधियों का महत्व / रचना कुमारी	33
40.	आधुनिक जीवन शैली और सिनेमा / चंचल	35
41.	पर्यावरण संबंधी समस्याएं एवं हमारा दायित्व / तनु जैन	37
42.	एल. पी. / सारांश वशिष्ठ	38
43.	हल / सारांश वशिष्ठ	38
44.	राजनीति का नव वर्ष / सुयश दीक्षित	39
45.	कुछ कह नहीं पाया / सुयश दीक्षित	39
46.	माँ / सुयश दीक्षित	39
47.	समय की सीख / अनुराग झाँब	40
48.	एक पहेली आँखें / अर्पिता अग्रवाल	40
49.	नारी / पंकज चौहान	40
50.	जीवन / राजमणि त्रिपाठी	40

ग़ज़लें

मैंने तूफ़ान से पहले का इशारा देखा
उनकी अँगड़ाई का जब शोख़ नज़ारा देखा।

अपनी किस्मत को किया मैंने हवाले उसके
उसने जाते हुए मुड़कर जो दोबारा देखा।

मैंने हर फूल में पाई है तुम्हारी खुशबू
यानी हर चेहरे में बस चेहरा तुम्हारा देखा।

हम तो बस आज तलक तेरे ही शैदाई हैं
तुमने सब देखा मगर दिल ना हमारा देखा।

लौट आते थे उसी ग़म की तरफ हम फिर से
जब भी चाहत का तेरी हमने किनारा देखा।

मेरे चेहरे की इबारत पे ना जाना 'आमिर'
मैंने फाकों पे भी हैं करके गुजारा देखा।

उसका एहसास मेरे साथ सफर करता है
चांद तारों में तेरा अक्स बसर करता है।

बिन बुलाए वह चला आता है मेरे दिल में
अपने आने की कहाँ मुझको ख़बर करता है।

तुम भुला दो सभी बातें वह मुलाकातें भी
इन्तज़ार अब भी कोई तेरा मगर करता है।

उनको सोचूँ तो मुसलसल मैं उन्हीं को सोचूँ
उनकी यादों में कोई शामो सहर करता है।

और तरकीब कोई सोच उसे पाने की
मेरा जज़्बात कहाँ उसपे असर करता है।

अर्थ- शोख़-शरारती, शैदाई - चाहने वाला
इबारत - लिखावट, फाकों - कई दिन भूखे रहना,
अक्स - साया, परछाई, मुसलसल - लगातार, जज़्बात - भावना

डॉ. आमिर रियाज़, असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग

मेरे प्यारे वतन

चाँद मुखड़ा तेरा फूल तेरा बदन।
मेरे प्यारे वतन, मेरे प्यारे वतन।।
देवताओं का वरदान तेरी ज़मीं।
मेरे जीवन का अरमान तेरी ज़मीं।
मेरी चाहत मेरी जान तेरी ज़मीं।
तू मेरी आरज़ू का महकता चमन
मेरे प्यारे वतन, मेरे प्यारे वतन।।

नाचती गुनगुनाती हवाएँ तेरी।
झूमती मुस्कुराती फिज़ाएँ तेरी।

मुझको बेखुद करे ये बहारें तेरी।
तुझसे महके हमेशा मेरा जानों तन
मेरे प्यारे वतन, मेरे प्यारे वतन।

जिसका सानी नहीं वो मेरा देश है।
सारे देशों से बढ़कर मेरा देश है।
बाँके-वीरों को प्यारा मेरा देश है।
राँझे-हीरों को प्यारा मेरा देश है।
ज़र्रा-ज़र्रा है जिसका चमन ही चमन
मेरे प्यारे वतन, मेरे प्यारे वतन।।

डॉ. फरहत जहाँ, असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राणी विज्ञान विभाग

'कम्प्यूटर' से दूरी क्यों?

कम्प्यूटर शब्द के साथ जो छवि हमारे सामने उभरती है वह है टेबिल पर रखा टीवी नुमा एक विद्युत चालित यंत्र। भारत में अपने प्रवेश वर्ष 1956 से 21वीं सदी के पहले दशक तक अधिकांश लोगों के लिए यह डरावनी वस्तु बना रहा। संतोष की बात है कि अब इन परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ है। अब यह यंत्र डरावना नहीं लगता अपितु एक मित्र की भांति हर स्थिति में साथ खड़ा प्रतीत होता है। इसका श्रेय विकसित होती मोबाइल तकनीकि को भी दिया जा सकता है। दूर दराज के क्षेत्रों में भी मोबाइल की पहुंच ने कम्प्यूटर की समझ को आसान बनाया है। वस्तुत: मोबाइल स्वयं में ही एक कम्प्यूटर है।

विगत 18 वर्षों के कम्प्यूटर शिक्षण के क्रम में इसकी सहजता और कठिनता दोनों को देखने समझने का अवसर मिला है। सहजता इतनी कि यह आप से उतनी ही बात करेगा जितनी आप इससे करेंगे। आपका आदेश ही इसके लिए ब्रह्म वाक्य है। आपकी प्रत्येक बात का जवाब देगा। आप इसकी अपेक्षा से बाहर आदेश करेंगे तो यह बहुत शालीनता के साथ शांत भाव से सिर झुकाकर खड़ा हो जाएगा। कम्प्यूटर की भाषा में इसे हैंग हो जाना कहेंगे। इसके पास विरोध का सबसे बड़ा यही ब्रह्मास्त्र है। आपने कभी नहीं सुना होगा कि ज्यादा आदेश देने पर कम्प्यूटर ने इतनी नाराजगी दिखाई हो कि वह भड़क उठा हो या ब्लास्ट कर गया हो। इसलिए इसके साथ संवाद स्थापित करना बेहद रोचक होता है।

कम्प्यूटर के पास दुनिया की सबसे छोटी और सबसे प्रभावशाली भाषा है जिसे कम्प्यूटर की शब्दावली में Binary Language कहते हैं। यह दो वर्ण (Letter) समझता और बोलता है 0 एवं 1 इन्हीं से वह 010, 0101,01010, आदि के रूप में कार्य करता है। इस भाषा में कम्प्यूटर स्वयं कितनी वर्ण संख्या प्रयुक्त करें, आपसे वह आपकी भाषा में बात कर सकता है। कम्प्यूटर के संबंध में बात करते हुए या प्रयोग करते हुए सबसे जरूरी यह जानना है कि आप इसका प्रयोग क्यों और किसलिए करना चाहते हैं कम्प्यूटर पर काम करने के सामान्यत: तीन क्षेत्र हो सकते हैं- सामान्य प्रयोग, विशेष उद्देश्यपरक प्रयोग और प्रोग्रामिंग। एक अध्यापिका के रूप में कहूं तो मैं अपने विद्यार्थी से यह जानना चाहूंगी कि वह कम्प्यूटर किसलिए सीख रहा है। क्या वह उसका सामान्य प्रयोग करना चाहता है? यानी Basic शिक्षा प्राप्त करना चाहता है? इसमें MS Word, MS Excel, VLC प्लेयर, विभिन्न प्रकार के गेमिंग Software, Search Engines जैसे google, softwares social naturebing के लिए जैसे Facebook आदि का प्रयोग है। इनसे दैनिक जीवन से जुड़े कार्य मेल भेजना, अपना छोटा सा पत्र, लेख आदि लिख लेना, बिजली बिल, पानी बिल या इसी प्रकार के रोजमर्रा के काम किए जा सकते हैं। इन्हें इस्तेमाल करने के लिए किसी विशिष्ट शिक्षा की जरूरत नहीं है तथा इनके प्रयोग से इनमें महारत हासिल की जा सकती है। उद्देश्यपरक से मेरा आशय है यदि कोई किसी मध्यम वर्ग तक की कम्पनी के हिसाब-किताब रखना चाहता है तो tally जैसे Software की जानकारी लाभदायक होगी। एनीमेशन में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों को Adobe flash, Maya आदि software को सीखना फायदेमंद है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार की जरूरतों के लिए वैसे ही softwares उपलब्ध हैं। इन softwares को सीखने के लिए बाजार में बहुत से ट्रेनिंग सेंटर हैं। प्रोग्रामिंग कम्प्यूटर का विशेष अध्ययन है। कम्प्यूटर सांइस में ऑनर्स डिग्री लेना या B.Tech जैसी डिग्री लेने वाले विद्यार्थी कम्प्यूटर का विशेष अध्ययन करते हैं। इनके लिए यह जानना आवश्यक है कि कम्प्यूटर कैसे कार्य करता है और कम्प्यूटर क्या कार्य कर सकता है? इसकी जड़ (Roots) कहां हैं और यह वट वृक्ष के रूप में कितना फैल सकता है? प्रोग्रामिंग के द्वारा हम कम्प्यूटर को यह सिखाते हैं कि किसी के क्या आदेश देने पर उन्हें क्या करना चाहिए। विभिन्न प्रकार के software जैसे Tally, MSWord, Goole, आदि जिनका जिक्र पहले किया गया है। प्रोग्रामिंग द्वारा ही बनाए जाते हैं। जितना बड़ा software उतनी ही ज्यादा प्रोग्रामिंग में कुशलता चाहिए जो कि कड़ी मेहनत के बाद ही आती है। आज के समय में अगर कोई क्षेत्र है जिसमें किसी ने बिना पुश्तैनी ज्यादाद को व्यावसायिक उंचाईयों को छुआ है तो अधिकतर वह इसी क्षेत्र के महारथियों ने किया है।

हमारे दैनिक जीवन में कम्प्यूटर ने नजदीकी संबंध स्थापित कर लिया है। वाशिंग मशीन का कपड़ा धोना, केबिल Gsatellite, इबतमे टेलीफोन answering मशीन, पोरटेबल Music Systems आदि अनगिनित जगह पर आजकल कम्प्यूटर का इस्तेमाल हो रहा है। देखने में चाहे यह वस्तुएँ हमारे मन में बसी कम्प्यूटर की छवि के अनुरूप नहीं है परंतु वास्तव में आजकल बिजली से चलने वाली अधिकतर वस्तुएँ उनके अंदर लगे छोटे-छोटे कम्प्यूटर द्वारा ही संचालित हो रही हैं। कम्प्यूटर से डरने की जगह हमें इनसे दोस्ती कर लेनी चाहिए।

डॉ. हरमीत कौर
एसोसिएट प्रोफेसर, कम्प्यूटर सांइस विभाग

■ ■ ■

नयनों की बोली

ना जाने कैसी किश्ती में सवार ये नयनों की डोली
मूक बनी जाने कैसे करती है मनवा की बोली।

कैसे कैसे रूप सजती आँखें मधुमय ये मतवाली
श्रृंगार से कभी ये भरी हुई विरह में है कभी खाली।

प्रेम वर्षा इन नयनों की हल्की हल्की फुहारों सी
मन को शीतल कर देती है तन को लगती अंगारों सी।

कहीं प्रीत का धागा है बाँधा कहीं जोड़ी रिश्तों की डोरी
नयनों के नित प्रहार बिना नयनों की मस्ती है कोरी।

कुछ और तुम दे दो...

मेरे मन की मति को, मति कुछ और तुम दे दो
मुझे इस छोर से उस छोर की तुम अनुमति दे दो।
लहू बनकर बिसर जाऊं तेरे हृदय के कण कण में
मेरे हृदय की गति को, गति कुछ और तुम दे दो॥

मेरे स्वप्नों की अग्नि, मुझे कुछ रोकती सी हैं
मैं कर जाऊं न जाने क्या, मुझे ये टोकती सी हैं।
बिना पंखों के दूरी भर उड़ानें भर नहीं सकता
मेरे स्वप्नों की अग्नि को ज्वाला रूप तुम दे दो॥

मेरी यादों का सागर, मुझे कुछ खींचता सा है
कहीं मैं डूब न जाऊं, कही कोई चीखता सा है।
बिना पतवार के मंजिल, मैं पूरी कर नहीं सकता
मेरी यादों के सागर को आँसू रूप तुम दे दो॥

ख़बर से ख़बर दब जाती !

ख़बर आती, ख़बर जाती
ख़बर से ख़बर दब जाती।

कुछ चिल्लाते, कुछ बतियाते
कुछ कहकर भी ना कह पाते
कुछ दिखाते, कुछ जताते
कुछ बुलाते, कुछ सुनाते
कुछ उड़ाते, कुछ खिस्याते
कुछ ख़बर ही अलग बताते

दिखावे की चादर फट जाती
ख़बर से ख़बर दब जाती॥

कुछ रोते, कुछ बिलखते
कुछ जलते, कुछ सुलगते
कुछ काटते, कुछ कटते
कुछ उतरते, कुछ फटते
कुछ पीते, कुछ गटकते
कुछ निगलते, कुछ सटकते

आखों से शर्म मर जाती
ख़बर से ख़बर दब जाती॥

ब्रजमोहन
सहायक प्रोफेसर
गणित विभाग

मिसाल

दोस्ती की नई मिसाल बना दी हमने,
अपनेपन की नई पहचान बना दी हमने,
हममें होती है तकरार मगर कोई पैकार नहीं,
हम सबका है मजहब अलग सही मगर,
हम किसी धर्म का करते अपमान नहीं,
करते हैं सम्मान मगर हममें कोई अंधविश्वास नहीं,
कोई जन्मा पूरब में तो कोई पश्चिम का वासी,
स्वदेश प्रेम है प्रवाहित होता हम में कोई द्वेष नहीं,
समाज से रखते हैं हर पल अपना बेहतर नाता,
समाज से है रिश्ता-नाता राजनीति है सबको भाता,
हैं नेता सबके अलग-अलग, सबकी है पहचान अलग,
मगर हमको है जनहित को सबसे आगे रखना आता,
हमारे रग-रग में है भरी पड़ी पूरी ईमानदारी,
हम हैं करते हर सुख-दुख में पूरी हिस्सेदारी,
हमको है मिली पैतामहिक गुणों की प्यारी पोटली,
इन्हीं से हम में है सभ्यता पहले से हुई पली,
हमारी कोई इससे अलग पहचान नहीं
इससे हटकर अपना है कोई पैगाम नहीं।

प्रभाकर
हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष।

भगत सिंह और आजादी

एक दिन हुई थी भगत सिंह की शादी,
दुल्हन बनी थी, उसकी आजादी।
कुछ और साथी भी संग में चले थे,
जल्लादों ने मंत्र पढ़े थे
फाँसी के फंदे से सेहरा सजाया,
दुल्हन तो आई, पर दुल्हा ना आया,
दुल्हन तो आई, पर दुल्हा ना आया।।

राधिका दत्त
स्नातक वनस्पति विज्ञान, तृतीय वर्ष

भीड़

गली, कूचों, सड़कों
बाजारों से डरकर घर आयी हूँ मैं,
भीड़ ने मुझे तोड़ दिया है
बहुत कोशिश करके
कुछ समय से मैंने
सुनसान से नाता जोड़ लिया है,
पर आज तो ऐसा लग रहा है -
मेरे अन्तर में सामनेवाली
विचारों की दुनिया अधिक भीड़ भरी है
अब किस स्थान में जाऊँ प्रभु।

सुनीति कौशिक
बी.ए. हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष

समभाव... थोड़ा वक्त निकालें हम

भागदौड़ के इस जीवन से,
थोड़ा वक्त निकालें हम,
अपने-अपने हुनर के छींटे
एक-दूसरे पर डालें हम,
दोस्तो, कुछ सीखें और कुछ सिखलाएं
भेदभाव सब टालें, हम,
और ना जाति, ना धर्म को पूछें
सबको गले लगा लें हम

प्रशांत जैन
बी.ए. प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष

कब्रिस्तान

महाकाल के कर कमलों से
इस धरा पे एक संसार बना
जहाँ विधाता की माया का
तनिक भी न कुछ काम बना
इस माया की माया नगरी से
सटा हुआ है एक स्थान
रहता है क्लेश रहित इंसान जहाँ
नाम है उसका कब्रिस्तान।
इस जगह के चहुँदिक् है प्रशान्ति
है तनिक मात्र नहीं क्लेश क्लान्ति।
यहाँ पहुँचकर समस्त प्राणी
करते हैं अर्जित विपुल शान्ति।
कोलाहल से सम्पूर्ण भरा
हर तरफ जहाँ रुदन क्रन्द्रन
काम क्रोध और माया को
सब लोग जहां करते वन्दन
दुनिया के झंझावातों से थक
मानव पाता है जहां शान्ति
कब्रिस्तान की मधुर तान में
चित्त न हो उनका अशान्त।
जाने कितने युग पुरुष पड़े
इसमें ताने अपना वितान
ये भी कभी इस दुनिया में
कर गये कुछ ऐसा भिन्न काम
इस धरा पे निज निज कर्मों को कर
हैं पड़े हुए अब शान्त अंग
अब समाधि को उनकी कोई
कभी न कर सकता है भंग
निज पूर्वज सदृश हम लोग भी
एक दिन वहाँ पर जायेंगे
सानिध्य में उनके सोकर अर्जित
विपुल शांति कर पायेंगे।
पूर्वजों को शान्ति दे
जो कर रहा एहसान है
धन्य है वह महाकाल
उसे बारम्बार प्रणाम है।
जिसके दिव्य धाम में जा प्राणी करता है चिर विश्राम
कृतकृत्य जगत है जहाँ पहुँचकर
नाम है उसका कब्रिस्तान

अनुराग त्रिपाठी
हिन्दी विशेष, द्वितीय वर्ष

माँ

बचपन से लेकर आज तक,
प्यार माँ करती रही।
जब चला मैं घर से, तब
माँ मुझे देखती रही।।
आँखों में थे आँसू, लगा कि
माँ मुझसे कुछ कह रही।
मैं था बस के अन्दर,
ना कुछ कह सका।
दूर से माँ इशारा करती रही,
जब छुए थे पैर मैंने
माँ उस घडी
रो पड़ी थी, मगर।
बस दुआ देती रही।
बचपन से लेकर आज तक,
प्यार माँ करती रही।

पवन कुमार
हिन्दी विशेष, तृतीय वर्ष

जीवन जननी का

एक छोटी सी जान
मानो तो जगत जननी।
जन्म पर हुआ अभिमान।
फिर भी शोक का
सन्नाटा बताया गया।
कहा सबसे वो आई,
बहुत लाई।
गर्भ में आई तो,
चिंता वो लाई।
घर में आई तो
दुविधा वो लाई।
जीवन में आई तो,
प्रताड़ना वो लाई।
कहकर उसको ठुकराया गया।
माँ की प्यारी थी वो
बाबा की दुलारी थी वो।
संजोकर उसको पाला गया।
पलकों पर जिसको बैठाया गया।
फिर-भी, फिर-भी,
इस जिल्लत भरे समाज में
शक की निगाहों में
उतारा जो गया।
ये लोग वहीं, ये समाज वही
नाम बनाकर जिसका
इतिहास के पन्नों पर
उतारा गया।
सम्मान दिया जिसने
मुज़रिम बनाकर दोषी
ठहराया गया।
वो मोहताज नहीं इंसाफ,
कि जिसे,
शान से जीना सिखाया गया।
जीवन जननी की एक छोटी सी
जान.....

प्रीति मराठा
बी.ए. हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष

विज्ञान

विज्ञान तूने कमाल कर दिया। इंसानी जीवन में रंग भर दिया।
मीलों पैदल चल कर जाना पड़ता,
अपने क्षेत्र में उपलब्ध खाना खाना पड़ता,
सिर्फ अपना लोकगीत सुनना गाना पड़ता,
दूर तक का स्वाद यातायात ने सुलभ कर दिया
इंसानी जीवन में रंग भर दिया।
रिश्तेदारों और जानकारों के कहाँ मिलते संदेश,
इसका भी पता नहीं था, कहां तक फैला देश,
अफवाहों से फैलता प्यार और द्वेष
हुआ बीमार तो इलाज के बिना मर गया
विज्ञान तूने
इंसानी जीवन में रंग भर दिया।
आज दूरभाष से बातें होती चाहे कितनी हो दूरी,
दूरदर्शन पर देख रहे दुनियाँ पूरी
कम्प्यूटर और इन्टरनेट अब हो गया जरूरी,
संसार, को डिब्बों में बंद कर लिया। इंसानी जीवन में रंग भर दिया।
बड़ी-बड़ी मशीनें बड़े बड़े उद्योग,
सुधर गये हैं इस दुनियाँ के लोग
ठीक हो जाते हैं, कितने कठिन हों रोग
मशीनों ने सब आसान कर दिया। इंसानी जीवन में रंग भर दिया।
विद्युत ने कितने चमत्कार कर दिए,
हजारों विद्युत चालक बना बाज़ार में उतार दिए,
हर तरह के कार्यो के लिए अनेक उपहार दिए,
पूरे संसार में उजाला भर दिया। विज्ञान तूने कमाल कर दिया।।
कृषि हो या उद्योग, निर्माण या मजदूरी, सब हो गए आसान
पूरी दुनिया हो गई विज्ञान की कद्रदान
इसी के सहारे टिका है उन्नति का जहान
सभी समस्याओं का इसने हल कर दिया। विज्ञान तूने कमाल कर दिया।।
इंसानी जीवन में रंग भर दिया।।

रंजीत सिंह
बी.ए. प्रोग्राम, प्रथम वर्ष

हमारा समय और हिन्दी उपन्यास

अपने समय और समाज से साहित्यकार का गहरा नाता होता है। एक संवेदनशील प्राणी होने के नाते यह संभव नहीं है कि वह अपने देश और विश्व में होने वाली घटनाओं से निरपेक्ष और निर्द्वंद्व होकर रहे। वह अपने लेखन के द्वारा उन सब चुनौतियों और समस्याओं को जरूर अभिव्यक्ति देता है जो उसे विचलित करते हैं। वह न केवल अभिव्यक्ति देता है बल्कि वह अपेक्षा करता है कि उसका साहित्य पढ़ने वालों में नई चेतना पैदा करे। वह बेहतर दुनिया बनाने के उसके संघर्ष में भागीदार बने।

हमारे समय के भारत में 'अमीरी बढ़ी है, तो गरीबी भी बढ़ी है। शिक्षा में बढ़ोत्तरी हुई है, तो निरक्षरों की संख्या भी कम नहीं है। आज भी दो तिहाई हिंदुस्तान के लोगों की रोजाना की आय 40 रूपये या उससे कम है। संयुक्त राष्ट्र संघ के विकास मानदंडों के अनुसार-हम 134 वें राष्ट्र हैं। हमारे नीचे सिर्फ एशिया और अफ्रीका के अविकसित देश हैं।

देश को गरीबी के अभिशाप से निकालकर सबको शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य की बुनियादी सुविधाएं प्रदान करने की बजाए देश के लोगों को जाति, धर्म, क्षेत्र और भाषा के आधार पर बांटने की कोशिश पहले के किसी भी समय से ज्यादा उग्र हो गई है। सांप्रदायिकता का जहर भी तेजी के साथ फैलता गया है। सन् 1992 में बाबरी मस्जिद से लेकर 2002 के गुजरात में मुसलमानों के नरसंहार तक हिंदुत्व की इन ताकतों ने अपनी विभाजनकारी नीतियों के बल पर देश की सत्ता पर काबिज़ होने में कामयाबी हासिल की है।

इसका अर्थ यह भी नहीं है कि स्थितियां पूरी तरह निराशाजनक हैं। इसी दौर में हमारे देश में दलित और स्त्री के सबलीकरण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। साहित्य में भी स्त्री और दलित को आवाज मिली है। यह आंदोलन व्यापक और मुखर हुआ है। आज हिंदी के उपन्यास साहित्य को इसी राजनीतिक सामाजिक परिदृश्य के आलोक में रखने का प्रयत्न करूंगा।

हिन्दी में उपन्यास की सौ साल पुरानी परंपरा है। उपन्यास को आधुनिक जीवन का महाकाव्य कहा जाता है। दूसरी ओर इसे पूंजीवादी विकास के साथ भी जोड़ा जाता है। हिंदी में प्रेमचन्द जैसे महान उपन्यासकार हुए हैं, उपन्यास परंपरा आज प्रेमचन्द से बहुत आगे बढ़ चुकी है। उसने हमारे समय और समाज को विविध रूपों और दृष्टियों से पेश किया है। आज जब हम वर्तमान परिदृश्य में उपन्यास को रखकर परखते हैं तब कुछ सवाल उठाने लाज़मी हो जाते हैं जो कुछ इस तरह से हैं क्या हिन्दी का उपन्यास वर्तमान परिदृश्य में अपनी सार्थक भूमिका निभा रहा है? क्या यह समकालीन समय के यथार्थ को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सक्षम रहा है? और क्या वह अनुभूति और अभिव्यक्ति से आगे जाकर अपने पाठकों को मुक्ति की ओर अग्रसर कर सका है?

सन् 1980 के बाद तेजी से मीडिया क्रांति हुई जिसने पूरे विश्व को गांव बना दिया परिणाम यह हुआ कि युवा पीढ़ी टी. वी. व फिल्मों में काम करने के लिए बेचैन हो गई। परदे के पीछे की सच्चाई जिसमें यौन शोषण से लेकर हर तरह का दमन शामिल है, आम आदमी की निगाह से छिपा रहा। कुछ उपन्यास मीडिया के इसी आंतरिक जीवन को दिखाते हैं, जैसे-निर्मल वर्मा-रात का रिपोर्टर, पंकज बिष्ट 'लेकिन दरवाजा', सुरेन्द्र वर्मा-'मुझे चांद चाहिए', चित्रा मुद्गल-'एक जमीन अपनी', दूसरी बात यह है कि इस दौर में उत्तर आधुनिक विचारधारा बहुत तेज़ी से साहित्य में प्रसारित हुई जिसका प्रभाव उपन्यासों पर पड़ना स्वाभाविक ही था। उत्तर आधुनिक चिंतकों जैसे ल्योतार, फूको, दरिदा और डेनियल बेल ने जो विचार दिये थे, उनका प्रभाव अलग-अलग प्रकार से कुछ उपन्यासों पर दिखता है। ऐसे सबसे बड़े उपन्यासकार हैं 'मनोहर श्याम जोशी' जिन्होंने उत्तर आधुनिक शिल्प का भी पर्याप्त प्रयोग किया। इनके उपन्यासों में प्रमुख हैं – हरिया हरक्यूलिस की हैरानी, हमजाद।

समकालीन उपन्यासों में कुछ अन्य उपलब्धियाँ भी दिखाई देती हैं जैसे:- तमसेम गुजराल-'जलता हुआ गुलाब' (आतंकवाद की समस्या), गिरिराज किशोर-'ढाई घर' (समाज में मूल्यों के परिवर्तन के साथ पीढ़ी संघर्ष), वीरेन्द्र जैन-'डूब पार' (बांध के कारण विस्थापन की समस्या), कमलेश्वर 'कितने पाकिस्तान' (साम्प्रदायिकता की समस्या)

बीसवीं शताब्दी की एक अनूठी रचना है 'मुझे चाँद चाहिए' (सुरेन्द्र वर्मा)। इसने हिंदी उपन्यास को एक नया जीवन प्रदान किया है। इसकी भाषा शैली इतनी रोचक और आकर्षक है कि पढ़ने वाला पूरी तरह इसमें तल्लीन हो जाता है। जनवादी, मार्क्सवादी और क्रांतिकारी रचनाओं के बीच यह मानवीय भावनाओं का भिन्न स्वाद देने वाली विशिष्ट रचना है। इनके अलावा नवें दशक के उपन्यासकारों में अब्दुल बिस्मिल्लाह (झीनी-झीनी बीनी चंदरिया, ज़हरबाद), मंजूर एहतेशाम (सूखा बरगद) संजीव (सर्कस, सावधान नीचे आग है) के नाम उल्लेखनीय हैं। वर्तमान दशक में वीरेन्द्र जैन (डूब, पार, पंचनामा), कमलकांत त्रिपाठी (पहीघर), पंकज बिष्ट (उस चिड़िया का नाम), प्रियंवद (वे वहाँ कैद हैं) आदि ने हिन्दी उपन्यास में नयी रचनाशीलता को सार्थक ढंग से प्रस्तुत किया है जिन उपन्यासों का जिक्र किया गया उनके संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी उपन्यास में किसी खास प्रवृत्ति या विचारधारा का दबाव नहीं है। इन उपन्यासों में विषयगत विविधता तो है ही, शिल्पगत नवीनता और प्रयोगशीलता भी विद्यमान है। इसीलिए ये उपन्यास किसी-परम्परा में अन्तर्भुक्त न होकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाते हैं। 'कुरू-कुरू स्वाहा' की रोमैण्टिक कथा और बम्बइया हिन्दी कथा का अलग रंग है तो कसप में उत्तर-आधुनिकता की झांकी विद्यमान है 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में बनारस के बुनकरों का जीवन यथार्थ और संघर्ष उन्हीं की बोली बानी में है तो 'सूखा बरगद' में हिंदू-मुस्लिम संबंध 'डूब' में मध्यप्रदेश के पिछड़े अंचल की व्यथा-कथा है तो 'उस चिड़िया का नाम' में पहाड़ी जीवन का संघर्ष, 'मथ्यादास की गाड़ी' में पंजाब की तीन पीढ़ियों का इतिवृत्त है। 'पाहीघर' में ब्रिटिश शासन के समय के अवध जनपद की गाथा अंकित है। अन्य विधाओं के रचनाकारों की अपेक्षा वर्तमान उपन्यासकार वैचारिक – कठमुल्लेपन और सीमित जीवनानुभव की बंदिशों से काफी मुक्त हैं।

हिंदी के पिछले दो दशकों के स्त्री लिखित उपन्यासों में मातृत्व के रूपक को व्यापकता मिली है। उसे शिशु तक सीमित न रखकर, पोषक तत्व की तरह पहचाना गया है। मातृत्व के व्यापक रूप का चित्रण सभी स्त्री कथाकारों ने किया है। नमिता सिंह के उपन्यास 'अपनी सलीबें' में शिक्षा संस्थान व सामाजिक संस्था के पोषण का चित्रांकन है तो क्षमा शर्मा के उपन्यास '6 शस्य का पता' में पर्यावरण के पोषण का। मातृत्व शक्ति उसे मानवीय सशक्तीकरण के आधार की तरह देखा है तो 'चित्रा मुद्गल' ने 'आंवा' में स्त्री को, किराए की कोख की तरह इस्तेमाल करने की साजिश चित्रित की है, जो आज बाजार युग की प्रवृत्ति बन रही है।

हमारे समय के हिन्दी उपन्यास को लेकर एक सवाल हमेशा उठाया जाता है कि – जिस तरह प्रेमचंद समाज के हर वर्ग और हर समुदाय पर लिखते थे। आज का लेखक इस तरह से अपने समय और समाज के बारे में नहीं लिख पाता। वह तो उसी समाज के बारे में लिखता है जिस समाज का वह हिस्सा है। हिंदू-हिंदू पर लिखेगा और मुसलमान मुसलमान के बारे में और दलित दलित के बारे में। इसमें एक मजे की बात यह है कि मैं खुद जिस जगह का रहने वाला हूं, रामपुर वहां की अधिसंख्य आबादी मुसलमानों की है। इसी तरह एक गांव मोहम्मदपुर है जहां अधिकांश आबादी हिन्दुओं की है। तो जब हमारा समाज ऐसा है तो साहित्य भी वैसा ही होगा। ऐसा नहीं है कि हिंदू लेखक मुस्लिम जीवन के बारे में नहीं लिख सकता या मुसलमान लेखक हिंदू जीवन के बारे में। यहाँ बात अनुभव संसार की है। जिसका अनुभव-संसार जितना व्यापक होगा उसके उपन्यास में उतनी ही व्यापकता चित्रित होगी।

एक और बात- इस दशक के अधिकतर उपन्यासों की बीमारी यह है कि वे कथा सुनाने के लिए लिखे जाते हैं। E.M.Faster ने इसलिए कहा था कि कथा पर बात करना उपन्यास के सबसे घटिया पक्ष पर बात करता है। कथा जो है उपन्यास का एक सूत्र है, वह नियामक नहीं हो सकती।'

पिछले दो तीन दशकों से हमारा अधिकतर साहित्य नगर केन्द्रित होता गया है। गांव-कस्बे का अनुभव, वहां की सामाजिक विसंगतियों, वहां के संघर्ष और वहां की जनता की आकांक्षाएं नगरीय लेखकों के अनुभवों का हिस्सा नहीं रह पाई हैं, इसलिए यांत्रिकता का दबाव बढ़ गया है। भाषा भी संकुचित हो गई है उसमें बड़े अनुभवों की जगह भी नहीं है। अलग-अलग अस्मिताओं को व्यक्त करने वाले चरित्रों का भाषिक वैविध्य अब

गायब ही हो गया है। अब यथार्थवाद रचना की अंतर्वस्तु का हिस्सा नहीं होता, कथा विन्यास सीधे अभिधा में व्यक्त होता है यह इस दशक के उपन्यास का सबसे बड़ा संकट है।

एक और बड़ा सवाल यहाँ यह निकल कर आता है कि पिछले बीस साल में कोई बड़ा उपन्यास युवा लेखकों ने नहीं लिखा। जो उपन्यास आए भी हैं वो अधेड़ उम्र या बूढ़े लोगों ने लिखे हैं। इसकी वजह यह दिखायी देती है कि 19वीं शताब्दी के आखिर तक और 1947 के बाद लगभग एक नेशन स्टेट बन गए हैं। लेकिन अभी भी हम नेशन नहीं बन पाये हैं। वर्णव्यवस्था उसमें सबसे बड़ी बाधा दिखाई देती है जो हमको नेशन बनने से रोकती है। हमारा साहित्य हमारी फिल्में, कहीं भी जातियों को समाप्त करने की बात नहीं कर रही हैं। जातियाँ मजबूत तो इस अर्थ में हो रही है कि जातियों से पालिटिक्स में, रिजर्वेशन में, नौकरियों में, इनमें फायदा हो रहा है। वे तमाम लोग जो जातियों को समाप्त करने के नाम पर हैं जैसे अम्बेडकर और लोहिया की धारा के लोग थे। वे ही जातियों को सबसे ज्यादा मजबूत करने का काम कर रहे हैं। ये जो बीस साल का हमारा समय है, ये जटिल समय है। मुझे लगता है कि नतीजे निकालना शायद ज्यादती होगी न तो हम कह सकते हैं कि इस समय में उपन्यास बहुत सफल विधा रही है और वो पूरे यथार्थ को पकड़ने में समर्थ रही है, और न ही हम इतनी आसानी से यह खारिज कर सकते हैं कि हम इस यथार्थ को पकड़ने में पूरी तरह से विफल हो गये। हम यह भी नहीं कह सकते कि यथार्थ को कविता ने पकड़ लिया।

पिछले दस वर्षों में जितना परिवर्तन हुआ है, मुझे लगता है कि हर क्षेत्र में, चाहे वो मोरेलिटी हो चाहे हमारी जन चेतना का प्रसार हमारा जो फिजीकल इंफ्रास्ट्रक्चर है। मैं छोटा सा एक उदाहरण देकर अपनी बात खत्म करता हूं कि एक समाज जो यौनिकता को लेकर बहुत ही ज्यादा कुंठित और बहुत फिक्सड आइडिया वाला समाज है, उसमें हमारे देखते-देखते समलैंगिकता को मान्यता मिल गई। सुप्रीम कोर्ट हाई कोर्ट से होते हुए वो हमारे साहित्य से होते हुए हमारे अपने आस पड़ोस तक पहुंच गई है।

■ ■ ■

मोहम्मद जावेद
हिंदी (विशेष), तृतीय वर्ष

बचपन एक सुनहरा पल

एक कमरे में बंद,
एक पिंजरे में क़ैद
अब बस यादों के जरिए
करुण बचपन की सैर।
इस पिंजरे में क्यों किया मुझे कैद
न मैं कोई पक्षी, न कोई जानवर
दोष बस इतना, हूँ मैं एक बच्चा
कैसे यह पल, बीत जाए कैसे भी
आ जाए कल, सब हो जाए कैसे भी,
इस गुमनाम से अँधेरे में
कुछ खो रहा हूँ मैं,
पर याद नहीं कैसे,
लेकिन हर खोई चीज़ के लिए
रो रहा हूँ मैं।
आँखों के सामने आई हर आकृति,
कहकर अब बस इतना ही जाती
क्यों तूने हमें इस अंधेरे में खो दिया,
हम वही हैं जो तू बचपन में ही छोड़ गया।
क्या जवाब देता मैं उनका,
सवाल यह सिर्फ मेरा नहीं, है हम सबका।
आज भी,
एक मासूम को देख,
बचपन लौट आता है हमारा
है चंचलता, वहीं आंखों में तेज,
चोट लगने में हो जाते थे दिवारों में छेद।।
लेकिन, समय की दीवार को कौन
लांघ सकता है, बीती बातों को कौन वापिस बना
सकता है,
बस याद आता है,
याद आता है वह, अपनापन,
वह सुनहरा पल, बचपन।।

पवित्र जोशी
प्राणी विज्ञान विशेष, द्वितीय वर्ष

आज का लोकतंत्र

अब्राहम लिंकन के अनुसार - लोकतंत्र ऐसी सरकार है जो लोगों की हो, लोगों के लिए हो और लोगों द्वारा बनाई गई हो।

लेकिन मैं मानता हूँ कि लोकतंत्र वर्तमान परिवेश में ''लोगों के लिए लोगों के द्वारा, लोगों की'' यह परिभाषा बदल चुकी है। आज लोकतंत्र में चुनाव हमारे लिए भले ही अपने जनप्रतिनिधियों को चुनने का माध्यम हों, लेकिन चुनाव के मैदान में उतरने वाले उन प्रतिनिधियों का मक़सद आज जनता की सेवा अर्थात् सेवा भावना नहीं रह गई है। उनके लिए आज राजनीति देश या समाज में कुछ विशेष योगदान देने के बजाए स्वयं को विशेष और मजबूत बनाना रह गया है। फिर चाहे उनका ये विशेष उनकी संपत्ति का हो या देश समाज में उनके अपने क़द को लेकर हो। कुल मिलाकर आज लोकतंत्र का संदर्भ परिवर्तित हो चुका है, उसकी परिभाषा आज बदल चुकी है। लेकिन इस चुनाव का अध्ययन करने पर प्रश्न यह खड़ा होता है कि हमारे जो भी प्रतिनिधि लोकसभा या विधानसभा में चुनाव जीत कर जाते है, वे जनता द्वारा ही तो चुन कर लोकसभा या विधानसभा में आए हैं। चुनाव के समय आम जनता अपनी मित्र मंडली में चाहे जितनी चर्चा कर ले, अपने प्रतिनिधियों का चाहे जितना विश्लेषण कर ले, लेकिन इसके बावजूद वे उचित एवं काबिल जनप्रतिनिधि चुनने में असफल रहते हैं। फिर चुनाव के पश्चात अपने भाग्य को कोसते हैं और अपनी गलतियों पर पश्चाताप करते हैं। प्रश्न यह उठता है कि वे अपने प्रतिनिधियों का चुनाव गलत कैसे कर लेते हैं? इसके कई कारण हैं -

क्षणिक लालच या स्वार्थ :

चुनाव के समय मददाताओं की एक बहुत बड़ी संख्या को चुनाव में उतरे धनी एवं आर्थिक रूप से मजबूत प्रतिनिधि द्वारा की जाने वाली ख़ातिरदारी (फिर वह ख़ातिरदारी शराब एवं बीयर की हो या भोजन की) इन सब छोटी-छोटी चीजों से आम नागरिक बिना किसी विरोध के अपने देवता के प्रसाद के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। वर्तमान राजनीतिक परिवेश पर ग़ौर करने पर यह सहज ही कहा जा सकता है कि आज हमारे देश में ईमानदार और कर्मठ नेताओं की कमी है। लेकिन इसका ये मतलब नहीं कि हम सामान्य नागरिक भी उस भ्रष्टाचार में लिप्त हो जाएं और चंद मामूली चीजों (शराब, खाद्य पदार्थों) के लिए अपना बहुमूल्य मत उन दोहरी प्रवृत्ति वाले नेताओं को दें। अगर हम बदलाव चाहते हैं तो हमें खुद को बदलना होगा। हमें एक जिम्मेदार नागरिक बनना होगा। तब हमारा यह भारत देश अवश्य बदलेगा और यहाँ की राजनीति भी।

मानसिकता :

चुनावों में लगातार अयोग्य प्रतिनिधियों के जीतने का एक कारण यह भी है कि आम जनता यह सोचती है कि हमारा कल्याण केवल दबंग छवि वाले, आर्थिक रूप से संपन्न और भड़काऊ भाषण देने वाले, किसी वर्ग विशेष के प्रति सहमति रखने वाले जिनकी

कथनी और करनी में सांप्रदायिकता और स्वार्थ की बू आती है वही कर सकते हैं। वहीं दूसरी तरफ एक अन्य सामान्य प्रतिनिधि के रूप में यदि कोई सामान्य व्यक्ति चुनाव मैदान में उतरता है, यदि उसकी आर्थिक स्थिति बेहतर न हो, उसका चरित्र 'दबंग' प्रवृत्ति का न हों फिर चाहे उसकी आँखों में अपने देश और समाज के कल्याण के जितने भी सपने संजोए हो, वो कभी पूरे नहीं होते। क्योंकि हमारी जनता के मानदंडों पर वे सामान्य और कर्मठ उम्मीदवार खरे नहीं उतरते।

अंध विश्वास :

अंध विश्वास आज भी हमारे समाज हमारे देश के लिए एक बड़ी चुनौती है। आज हमारे देश के अन्दर यदि राजनीतिक पार्टियों को देखा जाए तो उनकी संख्या सैकड़ों में नहीं वरन् हजारों में होगी। फिर क्या कारण था कि 15 अगस्त 1947 को भारत ब्रिटिश दासता से मुक्त होने के बावजूद एक-आध पार्टी की दासता से मुक्त होने में इतने बरस लग गए? क्यों हम उसे ढोते रहे? सिर्फ

खोखले समाजवाद के नाम पर? आज हमें बदलाव की आवश्यकता है। वो बदलाव हमारी सोच, हमारी पसंद, हमारे चुनाव में भी दिखना चाहिए तब जाकर कहीं हम बदलने की कल्पना कर सकते हैं। नहीं तो हम इस ''अंध विश्वास'' के भार तले इतना दब जाएंगे कि फिर शायद उठ ना सकें।

जातिगत राजनीति :

जातिगत राजनीति हमारे देश को विरासत में मिली है। यदि हम आजादी के बाद से चर्चा करें तो हम पाएंगे कि राजनीति का यह माध्यम और भी सक्रिय हो गया है। आज हमारे देश में यह चर्चा चल रही है कि हमारा देश 'सेक्यूलिरिज्म' की ओर बढ़ रहा है। वास्तविकता यह है कि यह कल्पना अभी जल्दबाजी होगी। हाँ इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि हमारी जातिगत रूढ़ियाँ पहले जितनी दृढ़ नहीं रह गयी हैं। इसे एक अच्छी शुरूआत कहा जा सकता है। आज एक ब्राह्मण और एक दलित एक थाली में भोजन करते दिख सकते हैं। इसका कारण अच्छी शिक्षा है। जिसने हमारी सोच को नवीन किया है।

बात जब जातिगत राजनीति की आती है तो हमारे देश की तमाम बड़ी पर्टियां किसी क्षेत्र विशेष की सभी जातियों का आंकड़ा निकालती हैं, और जो वर्ग बहुमत में होता है प्राय: उसी वर्ग के, जाति के अपने किसी नेता को टिकट दिया जाता है। इसका ज्वलंत उदाहरण 'बिहार राज्य' में देखा जा सकता है। जहां 2015 अक्टूबर-नवंबर में विधानसभा चुनाव हुए। इस चुनाव में हमारे देश की एक शीर्ष पार्टी, जो सेक्यूलिरिज्म की रखवाली बनती है, ने चुनाव में 250 से अधिक जातिगत सभाएं कीं जिसमें इस पार्टी के बड़े-बड़े नेताओं ने शिरकत की। यहां हमारे सामने यही तथ्य उभर कर सामने आता है कि स्थिति और परिवेश के हिसाब से राजनीतिक पार्टियां अपनी विचारधारा और चुनावी रणनीतियां बदलती हैं।

शिक्षा :

आज आजादी के इतने वर्षों बाद भी हमारा देश पूर्ण रूप से साक्षर या शिक्षित नहीं है। आज यदि देश में साक्षरता दर देखें तो केवल 74 प्रतिशत है। शिक्षा के अभाव में लोगों की सोच विकसित नहीं हो पाती और वह अपने सीमित ज्ञान के बल पर बेहतर चुनाव नहीं कर पाते हैं।

'पेड न्यूज' के रूप में वर्तमान समय में मीडिया जगत के अंदर अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य ने एक नई चीज की उत्पत्ति की है जिसे पेड न्यूज के नाम से जाना जाता है।

सरल शब्दों में कहे तो उदारीकरण के दौर में मीडिया संगठनों ने पैसा कमाने की नई तरकीब खोज ली है, जो अखबारों की विश्वसनीयता पर सवालिया निशान लगाती है। इस तरकीब को पेड़ न्यूज के नाम से जाना जाता है।

चुनाव के समय समाचार पत्र जनता के मत के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। यदि वह हमें गलत सूचना दें तो हमारे मत का निर्धारण भी गलत हो सकता है। हम आज अधिकतर समाचार पत्रों पर निर्भर हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस व्यापार में केवल प्रिंट मीडिया ही शामिल नहीं है मीडिया के अन्य माध्यम भी इसमें संलिप्त हैं। हमारे जन नेता चुनाव के समय मीडिया का भरपूर प्रयोग कर रहे हैं। इसके लिए उन्हें काफी पैसे खर्च करने पड़ते है। जिसके बाद वह

अपने खर्चे को सूद समेत पूरा करते हैं। फिर जनता टकटकी आंखों से मूक दर्शक मात्र बनकर रह जाती है। इसलिए मीडिया को भी अपने कर्तव्यों का निर्वहन ईमानदारी पूर्वक करना चाहिए।

इन सब तथ्यों से यही बात उभरकर हमारे सामने आती है कि वर्तमान परिवेश में लोकतंत्र और उसमें हमारे जनप्रतिनिधियों के लिए चुनाव अब किसी सेवा भाव का प्रतीक नहीं बल्कि एक पेशा बन चुका है क्योंकि वो जनता से किए गए वादों को चुनाव जीतने के बाद पूरा नहीं करते, बल्कि किसी न किसी बहाने असमर्थता जताते हैं।

हरि किशोर शर्मा

हिन्दी विशेष, तृतीय वर्ष

यह मंगलवार को ही क्यों होता है?

जब कभी मैं अपने छात्रावास से निकलकर बाहर की ओर जाता हूँ, रास्ते में पड़ने वाले हनुमान मंदिर पर मेरे कदम थम से जाते हैं। यहाँ मंदिर के बाहर और अन्दर भीड़ बहुत ज्यादा है, तो यह आभास हो जाता है कि 'आज मंगलवार का दिन है'। गाँव में कई बार सुना था कि मंगलवार हनुमान जी का दिन होता है, पर ऐसा सच में होता है यहाँ मंदिर के बाहर खड़े होने से पता चलता है।

मेरा मन मुझसे बार-बार पूछता है कि ऐसा क्या खास हो जाता है मंगलवार को? क्या हनुमान जी हफ्ते में छ:दिन सोते रहते हैं। जो एक ही दिन जगते हैं और भक्त उनसे मिलने के लिए बहुत उत्साहित रहते हैं। बहुत जाँचने पर परखने के बाद पता चला कि सच में मंगलवार को कुछ होता है। मंदिर के बाहर खड़े लोग हनुमान जी से मिलने नहीं आये, बल्कि उनसे मिलने आये हैं, जो बड़ी-बड़ी गाड़ियों से हनुमान जी से मिलने आये हैं अर्थात् उन बाहर खडे आदमी औरतें और बच्चों के लिए हनुमान जी से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है ये हनुमान भक्त जैसे ही कोई 'बड़ा' भक्त प्रसाद लेकर बाहर निकलता है, मक्खियों के झुंड की तरह सभी उसकी और दौड़ पड़ते हैं। कुछ छोटे बच्चे तो सड़क पर सरपट दौड़ती गाड़ियों की भी परवाह नहीं करते। तब मुझे लगा कि कुछ खास होगा उस प्रसाद में जो लोग अपनी जान की परवाह किये बिना ही भाग रहे हैं।

एक दृश्य जो सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है, वह उस बंदर वाले का, जो पहले एक बंदर लेकर आता था, पर अच्छा बाजार देखकर आजकल दो बंदर लेकर आता है। हनुमान जी और बंदरों का कुछ तो नाता है जिसके कारण जो भी मंदिर से निकलता है, कुछ पैसे और बूंदी के

कुछ दाने उस थाली में डालता चलता जाता है। पता-चला कि लोग बंदर को हनुमान जी का रूप मानते हैं। इसलिए वो पैसे डालते हैं, लेकिन फिर मैंने सोचा कि अगर रूप बाहर ही बैठा है तो लोग अंदर क्यों जाते हैं? और अंदर दर्शन कर लेते हैं तो क्या उन्हें संतुष्टि नहीं होती, जो फिर से बाहर दर्शन करते हैं। फिर मेरा ध्यान मंदिर और पुजारी जी पर गया। मैं सोच में पड़ गया कि हर मंगलवार को इतनी सजावट क्यों होती है? शायद मंगलवार को ही हनुमान जी खुश होते हैं। पुजारी जी की अकड़ मंगलवार को बढ़ जाती है और वे तो ऐसे लगते हैं कि बिल्कुल 'हनुमान जी के मुख्य एजेंट हो गये हों।'

इन सभी के बीच जो इस मंगलवार का बेसब्री से इंतजार करते हैं, वो दुकानदार जिन्होंने मिठाई की दुकान खोल रखी है। सामान्य दिनों पर सिर्फ एक दुकान खुलती है, पर मंगलवार को दो दुकानें खुलती हैं और उनके मालिक हनुमान जी का टीका लगाकर पैसे गिन रहे होते हैं। कई लोग तो राहगीरों के लिए पूरी-सब्जी का भी प्रसाद बंटवाते हैं और इसका पूरा फायदा ये रिक्शेवाले उठाते हैं और मुझे यह बांटने का तर्क समझ में नहीं आता। बस यही सोच कर खुश हो लेता हूं कि कम से कम किसी की तो भूख शांत हुई।

यह मंगलवार का ही दिन है जब हमें अपने देश की विडंबना देखने को मिलती है। एक ओर कोने में अपनी ट्राईसाईकिल पर अपाहिज लोग, दूसरी ओर बंदरों के साथ बैठा वो व्यक्ति, बच्चे, औरतें और आदमी जो मांगने आ जाते हैं और दूसरी ओर बड़ी महंगी गाड़ियों से उतरकर आने वाले लोग, जो जिन्दगी में कभी कतार में नहीं खड़े होना चाहते, पर इस 'मंगलवार' ने उनसे वह भी करवा दिया। वहीं वो मिठाई वाला जो गरीबों की तरह हर रोज मंगलवार के सपने देखता है और कुछ वे जो प्रसाद की पूरी-सब्जी का आनन्द उठाते हैं, यह उस दूध से तो बेहतर है जो 'शंकर जी के शिवलिंग पर बहाया जाता है और कोई उपयोग में नहीं आता। खैर उसकी बात किसी और दिन करेंगे। इधर अकेला मैं जो सिर्फ यही सोच रहा होता हूं कि 'यह मंगलवार ही क्यों आता है? और ''यह मंगलवार को ही क्यों होता है?''

आकाश कुमार सिंह

हिंदी विशेष, द्वितीय वर्ष

क्या मैं गलती हूँ?

क्या मैं गलती हूँ?
अगर हाँ तो फिर....
भगवान ने इतनी बड़ी गलती कैसे की?
वो तो भगवान है और
अगर भगवान गलती कर सकता है तो
मैं क्यों नहीं....?
इसलिए कि मैं नारी हूँ
या फिर शायद गलती....
या फिर शायद मुझे मनुष्य ही नहीं समझा
जाता
क्योंकि मनुष्य वाला व्यवहार तो
नहीं करता कोई.....
सिर्फ इसलिए कि मैं एक नारी हूँ या
नहीं, नारी नहीं गलती....
तुम्हारी दृष्टि में।।

एक सवाल

तुम्हारे लिए क्या हूँ?
केवल भोगिनी...
कभी बेटी बनकर
कभी पत्नी बनकर
तो कभी माँ बनकर
जीवन भर केवल भोगा गया।
पहले बेटी थी तो
पिता का दायित्व थी.... या एक बोझ
उनके घर की लाज बचाते
अपना सब कुछ त्याग दिया।
फिर पत्नी बनी तो
पति का दायित्व हो गई.... या फिर एक जरूरत
पति का घर सजाते-सजाते
अपना अस्तित्व मिटा दिया।
फिर माँ बनी तो
गर्वान्वित हुई और
ममता में सबकुछ भुला दिया।
अपना सारा जीवन यूँ ही दूसरों के नाम पर बिता दिया।।

शाज़िया
हिन्दी विशेष, तृतीय वर्ष

वर्तमान में भारत की दशा

हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-ईसाई
सब हैं हम भाई-भाई
छोटी-छोटी बातों पे हम रोज करते हैं लड़ाई
पैदा होते जिस माँ की कोख से
फिर भी यह भूमि उन्हें क्यों लगती है पराई
विविधता में एकता, भारत की पहचान है
कोई भूखे सोए, कोई खाने से ही परेशान है
कोई नंगे घूमे।
किसी के पास कपड़ों का अंबार है
यही भारत की शान है।
चारों तरफ हाहाकार है
सहिष्णुता का भार है
पुरस्कार लौटाने का रिवाज़ है
चंद राजनीतिज्ञों के चलते, भारत सांप्रदायिकता का शिकार है।
खूब लगे नारा जय जवान जय किसान
आज वही किसान हैरान है
बिजली, पानी, खाद, बाढ़, सूखा से बेहाल है।
सरकार है ऐसी जो जन्मदिन, नाचगाने
व घूमने में ही परेशान है।
खून पसीना एक करके, सबका पेट भरता किसान
पूछिये आज वही मजबूर है।
आत्महत्या करने के लिए क्योंकि सरकार ने
भी उठा लिए अपने हाथ

धर्मेन्द्र गुप्ता
बी.ए. प्रोग्राम, द्वितीय वर्ष

एक कहानी

एक कहानी कहता हूँ
जिस गोदी में रहता हूँ
मन है निर्मल, लीला आब
उसका वर्णन भी है ख्वाब।
महिमा-मण्डन करते जिसका
हर्षित नहीं समाता हूँ
उसका वर्णन ही असम्भव है
पर कोशिश करने जाता हूँ।
हिम जिसका आँचल है
और कन्या सी वह कुमारी
पश्चिम बंग में सुन्दर सी
बहुत बड़ी बनवारी।
मेघ जिसका आलय हो
राज जिसका हर स्थान
तीन पुरों की रानी है जो
हरा भरा जिसका है यान।
जन्नत जहां ज़मी पर हो
प्रकृति सुन्दर शोभा अपार
संस्कृति सुन्दर स्वप्न सी
सागर भरता अद्भुत सार।
जीव जन्तु जितने हैं खेले
गोदी में माँ की करें किलोलें
नभ अपार सा हृदय है जिसका
रहते ब्रह्मा, विष्णु, भोले।
गंगा यमुना धारा है
जिसका नहीं किनारा है
पानी भी अमृत है जिसका
बसता जिसमें जग सारा है।
वेदों ने ढक रखा जिसको
अतुल्य ज्ञान मिलता जहां सबको
ऋषि-मुनि और संत महान
विश्व ज्ञान में दिया योगदान।
गुरू ग्रंथ साहिब है जिसका
जिसका है यह ग्रंथ कुरान
महायुद्ध और रामायण भी जिसका ही है महापुराण।
धर्म यहां पनपे हैं जितने
धारण कर, हैं कर्म ही बडे
हर बंधन बाँधे ये बढ़िया
छल-कपट और मोह से लड़े।
जन जन जनम जाहिर करने
जहां प्रेम सद्भाव-सदाचार
जहां होता सुख-शांति और
भाई चारे का व्यापार।
जहां दिखे अंबर है नीला
सूरज भी जलता है लाल
सात रंग का इन्द्रधनुष है
रंग-बिरंगा जिसका भाल।
वास्तु कला देखो है अद्भुत
मिला जुला जिसका है साज
अजब-अनोखी विश्व की
जिसकी हर चीजें सरताज।
कला-कला कितनी न जाने
हर कोई जिसकी ठाठ है माने
उस माँ के मैं गीत गाऊँ
जहाँ हवाएँ भरती तानें।
युग युग से वर्णन होता जिसका
पर आज भी नहीं हुआ समाप्त
उसकी कला ने सबकी कला को
विस्तार से अपने दी है मात।
अब मुझसे न वर्णन होता
बस मैं जोड़ूँ अपने हाथ
और कह दूँ अब हे माता मुझको
तुम रखना बस अपने साथ।

योगेश पाण्डे
हिन्दी विशेष, तृतीय वर्ष

योगा रूम

महीनों की ज़िद्दोज़हद
दर-दर की ठोकरें
कमरा-दर-कमरा
भटकती मानुषी आत्माऐं
सहयोगियों के रहमोकरम से
ख़ैरात में मिला
यह कमरा
बड़ा अज़ीज़ था मुझे
अकेला तन्हा
वो कमरा बात करता था
अब जब मैं खड़ा हूँ
ज़िन्दगी के उस मुहाने पर
जहाँ से छूटने लगे हैं
सब साथी
जहाँ से अब लौटना
मुमकिन न होगा
तब याद करता हूँ
उस कमरे के दरों-दीवार को
जो गवाह हैं मेरी
बेशुमार कारस्तानियों के
कॉलेज की तमाम तड़क-भड़क से दूर
कैंटीन से उठने वाली हवाओं के साथ
बहती खुशबू
महका जाती थी, उस कमरे को
ना चाहते हुए भी, ज़ुबाँ पर पानी आ जाता
और हम टूट पड़ते
एक दूसरे के खानों पर
मेरी सारी गुस्ताख़ियों को छिपाता
वो कमरा याद आता है
मैं कहता न था,
वो कमरा बात करता था।
क्लास के बाद
शांति से बैठने का एकमात्र स्थान
चाहे-अनचाहे
जमने वाली महफिलें
ज़ार-ओ-क़तार
रोते आशिक़
बुझी बीड़ी सी - सुलगती
माशूकाएँ
शायरी के गूँजते
तराने
संगीत के झनझनाते
तरन्नुम
खिड़कियों से टकराती, बलखाती हवा की सनसनाहट
और बिखर जाने वाले परदे
किसी के आने की आहट
और उससे पैदा होने वाला डर
बस यही था वो सब
कि यह कमरा याद आता है
मैं कहता न था,
वो कमरा बात करता था।

मोहम्मद जावेद
हिन्दी (विशेष) तृतीय वर्ष

कि लिखा जाना था.....

वो जिसका लिखा जाना संभावित था
जाने कितना
असंभावित लिख डाला गया
उसके लिखे जाने की संभावना मात्र पर
कि लिखा जाना था-रौशनी,
मगर लिखा गया सूरज, चाँद, सितारे, जुगनू,
कौंधती बिजली, चिराग, मशाल
और बंद आँखें.....
कि लिखा जाना था-उड़ान
मगर लिख गये परिन्दे
वो भी पर-कटे.....
कि लिखा जाना था - ख्वाब
मगर लिखी गई नींदें
बेजान और हताश.....
कि लिखा जाना था - प्यार
मगर लिखा गया जिस्म, गोलाइयां
और जरूरतें
अंधी और भटकी हुई
कि लिखा जाना था - इंसान
मगर लिख गया स्त्री पुरुष, गोरा-काला,
हिन्दू-मुसलमान, आर्य अनार्य,
भगवान और शैतान
कि लिखा जाना था - ईसा, बुद्ध, कृष्ण, मुहम्मद,
नानक, कबीर
मगर लिखा गया
पंथ, मार्ग, मज़हब, धर्म और दीन
कि लिखा गया -
आस्तिक, नास्तिक, ईमान और काफ़िर.....
कि लिखा जाना था - संस्कार
मगर लिखी गयीं नमाज़ें, आरतियाँ
और तमाम खुदाई बातें.....
कि लिखी जानी थी - भूख
मगर लिखी गयी क्रांति और जुलूस
बड़े बड़े नारे झण्डे और बौद्धिकता
कि लिखा गया पाखण्ड
और लिखी गयी चालाकी और चापलूसी.....
कि लिखा जाना था - हक
मगर लिखा गया - जरूरत, लूट और तरस....
कि लिखा जाना था - वर्तमान (हँसता खिलखिलाता)
मगर लिखा गया - इतिहास, मार-काट, हार-जीत
कि लिखा गया भविष्य, शान्ति, सद्भाव
साज़िश, साम्राज्य, राजनीति....
कि लिखा जाना था
"कुछ भी नहीं"
मगर सिर्फ लिखा गया
"सब कुछ"

मोहम्मद जावेद
हिन्दी (विशेष) तृतीय वर्ष

खेल

क्या खेलूं मैं इनसे
अजब-सा खेल है
दो अक्षर की 'मौत' है
तीन अक्षर का 'जीवन'
खेल सारा ही तो
दोनों का बस मेल है।

आकाश कुमार सिंह
स्नातक हिन्दी, द्वितीय वर्ष

प्रिय दोस्तो आज कलम चलाते हुए कुछ कहना चाहता हूँ। वैसे तो पहले मैं आप सब को नववर्ष की शुभकामनाएं दे रहा हूँ। आप सबके मंगल की कामना करता हूँ। आज हम सब हंसराज कॉलेज में पढ़ते हैं लेकिन कभी हम ये सोचते हैं कि आज हमारे समाज में शिक्षा के क्या हालात हैं? क्योंकि आज हमारे देश में साक्षर होने की आयु तो 7 वर्ष है लेकिन हर दूसरा बच्चा कुपोषण का शिकार है। क्या आज सात वर्ष की उम्र में बच्चों को साक्षरता प्राप्त हो रही है? क्या आज शिक्षा का अधिकार सुरक्षित है? क्या बच्चों के मौलिक अधिकार उनको मिल पा रहे हैं? जिस देश में 30 करोड़ लोग दो समय की रोटी के लिए तरसते हैं उस देश में 7 वर्ष साक्षरता की उम्र कैसे हो सकती है? क्या आप सोच सकते हैं कि जहां पर हर दूसरा बच्चा कुपोषण का शिकार है उस देश का बचपन 7 वर्ष में साक्षर हो सकता है? (आंकड़े महिला बाल विकास मंत्रालय) ये सब विड़ंबनाये ऐसे ही सृजित नहीं होतीं अपितु उनके पीछे समाज की विस्तृत भूमिका होती है।

आज हम सब उस समाज के अंग हैं, जहाँ पर अशिक्षा, भुखमरी, कुपोषण एवं दमन जैसी समस्यायें हैं। इन सभी समस्याओं के यदि मूल में जायें तो अशिक्षा ही इनका कारण जान पड़ती है। आज जब मैं अखबारों के पन्नों पर बुंदेलखण्ड के सूखे की स्थिति को देखता हूँ, तो मैं ये सोचने के लिए मजबूर होता हूँ कि क्या वहाँ के बच्चों को शिक्षा मिल रही है? मैं अपने अंतर से उत्तर पाता हूँ कि जिनके पेट में खाना नहीं है, वो क्या पढ़ेंगे? बुंदेलखण्ड सूखा तो मात्र एक उदाहरण है ऐसे हजारों कारण आज हमारे देश में विद्यमान हैं जिससे हमारा बचपन शिक्षित नहीं हो पाता है।

आज हम अपने समाज में देखें तो जैसे शोषण की प्रक्रिया को समाज ने सहज रूप से स्वीकार कर लिया है। उसे अपने जीवन का अंग मान लिया है। जो समाज एवं सरकार के ऊपर प्रश्न चिह्न लगा रहे हैं, कि सरकार द्वारा शिक्षा पर व्यय किया जाने वाला धन क्या वास्तव में गरीबों तक पहुँच पा रहा है। मैं यहाँ महाराष्ट्र के आश्रम स्कूलों की चर्चा करना चाहूँगा। जहाँ पर आदिवासियों के कल्याण के लिए आश्रम स्कूल तो खोले गये लेकिन उनमें बचपन के उत्थान की जगह उनके शोषण के स्थान बनकर उभरे हैं। जो जगह बचपन को संरक्षित करने के लिए बनायी गयी उस जगह पर बच्चों का शोषण हुआ। जिसमें एक छठी कक्षा की बच्ची का गर्भवती हो जाना सभ्य समाज के मुँह पर कालिख पोतने का काम करता है। समाज और सरकार पर व्यापक प्रश्न चिह्न लगाता है। जब मैं सुबह अपनी बालकनी से बराबर के घर पर खड़ी कार को एक 13 साल की लड़की के द्वारा साफ करते देखता हूँ तो मन कसक जाता है। जी भर आता है। मैं कभी आई.टी.ओ. जैसे स्थान पर छोटे छोटे बच्चों को कार के शीशे साफ करते देखता हूँ तो मन भर आता है और लगता है कहां है, सरकार की योजनाएं बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ, शिक्षा का अधिकार जैसे कानून कहां गये?

आज नेताओं का बौद्धिक वर्ग असहिष्णुता पर बहस करता हुआ मिल जायेगा। बहुत मिल जायेंगे असहिष्णुता पर पुरस्कार वापसी करते हुए या असहिष्णुता पर लेख लिखते हुए लेकिन क्या किसी लेखक ने कभी उन गरीब बच्चों के लिए अपना पुरस्कार लौटाया जिसने आज तक स्कूल का मुंह नहीं देखा? क्या कोई मुख्यमंत्री या केन्द्रीय मंत्री उन बच्चों से मिले? या क्या कभी किसी बौद्धिक वर्ग ने एक लेख भी लिखा शायद कुछ अपवादों को छोड़ दें तो उत्तर एक स्वर में नहीं मिलेगा। क्योंकि किसी भी नेता मंत्री या बुद्धिजीवियों को उन से मतलब ही नहीं है। उन गरीब बच्चों से वोट पुरस्कार और पैसे नहीं मिलने वाले मतलब उनका कोई फायदा नहीं होने वाला और बिना फायदे के तो मूर्ख भी प्रवृत्त नहीं होता है। आज भारत के बचपन का अशिक्षा कुपोषण तथा बाल मज़दूरी से ग्रसित होना सरकार तथा समाज के मुँह पर कीचड़ का धब्बा है तथा हम सब को आइना दिखा रहा है। आज भारत सरकार द्वारा जारी किये गये आंकड़ों के अनुसार देश के अन्दर 40 लाख बाल मज़दूर हैं।

आज के समाज तथा सरकारी मशीनरी ने गरीबों के शोषण के लिए नित नयी तरकीब विकसित करने का जैसे ठेका ही ले लिया हो। ऐसी अनेक समस्यायें विद्यमान हैं जो भारतीय बचपन के शिक्षित होने में बाधा उत्पन्न करते हैं। जिनका समाधान ढूंढना सभ्य समाज के लिए एक व्यापक एवं विस्तृत चुनौती है। इसी विषय में मुझे गांधी जी का विचार याद है, वो शिक्षा को सरकार तथा समाज दोनों की जिम्मेदारी समझते हैं, शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के लिए शिक्षा के ट्रस्टीशिप पर जोर देते हैं। इसी विषय में पाश्चात्य दार्शनिक जेम्स रशेल्स का आंशिक पक्षपात का सिद्धांत इस अशिक्षा की समस्या के समाधान के लिए सटीक प्रतीत होता है। जिसमें उन्होंने अपने बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तो कहा है लेकिन उनकी भोग विलासिता में कटौती की भी बात कही है। उन्हें गरीब असहाय बच्चों की मदद करनी चाहिए। आज हमारे देश में विद्यमान अशिक्षा के लिए समाज सरकार एवं प्रशासन सभी उत्तरदायी हैं हम सबको मिलकर इस विसंगति को दूर करना चाहिए.....

बहुत जरूरी होती शिक्षा सारे अवगुण धोती शिक्षा।

कर्त्तव्यों का बोध कराती शिक्षा सर्वोपरि सम्मान दिलाती शिक्षा।।

अतुल कुमार शुक्ला

बी.ए. द्वितीय वर्ष, संस्कृत विशेष

समाज में नर एवं नारी दोनों ही समाज की धुरी हैं दोनों के सामान विकास से ही नारी, समाज तथा देश का कल्याण हो सकता है इसके लिए सबसे प्रमुख तत्त्व है – नारी शिक्षा, नारी सशक्तीकरण आदि।

नारी यदि शिक्षित है तो उत्तम समाज, परिवार देश के निर्माण में सहायक हो सकती है। इसके साथ ही नारी का सम्पूर्ण विकास आत्मनिर्भर, साहसी, परस्पर सहयोग दायित्व सभी मुद्दों पर नारी का महत्त्वपूर्ण समाजपक्षीय मत होगा। गुणों के लिए शिक्षा की अहम भूमिका है।

इसलिए कहा भी गया है कि विद्या विनय देती है। विदुषी नारी ही शिक्षा का महत्त्व समझ सकती है। साथ ही साथ जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवता का भी निवास स्थान होता है, प्रायः समाज में आंशिक रूप से नारी को सम्मान तो मिल जाता है लेकिन मुख्यतः देखा जाता है कि किसी पर्व विशेष पर अर्थात् दुर्गापूजा, दिवाली आदि में नारी को देवी, लक्ष्मी, गृहशोभा आदि प्रकार से सम्मान मिल जाता है, परन्तु ये क्षणिक ही देखा जाता है। यदि स्त्री (नारी) शिक्षा पर ध्यान दिया जाए, उसे शिक्षित किया जाए तो नारी का स्वयं विकास होगा। नारी द्वारा संचालित परिवार का उत्थान, खासकर बच्चे का संस्कारवान होना ये नारी-शिक्षा से आसान हो सकता है। इसके साथ ही शिक्षित नारी व्यापार, नौकरी, पठन-पाठन इन सभी क्षेत्रों में पुरुष के साथ चलकर उत्तम समाज, देश, परिवार आदि का निर्माण कर सकती है। नारी शिक्षा का कोई मूल्य नहीं है। इसे किसी भी स्तर पर नजरन्दाज नहीं करना चाहिए ऐसा करने से समाज की समुचित व्यवस्था नहीं चलेगी।

अतः नारी-शिक्षा की प्राथमिकता परिवार, समाज, राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होनी चाहिए तभी उत्तम जीवन का आनन्द उठाया जा सकता है।

बालकृष्ण झा

संस्कृत विशेष, द्वितीय वर्ष

वो अलविदा

जब भी घर से आता हूँ
उन आँखों को नम ही पाता हूँ
वो आँखों की नमी कुछ कहती है
विरह की पीड़ा सहती है
सपने बुनती है यही,
कुछ बन के, मैं आ जाऊँ
चाहत रखती हैं यही,
जमाने की हर शै, मैं पा जाऊँ
तेरी मेरी कुरबत को कैसे लिखूँ, माँ
जिसकी शिद्दत मुझे ही ना मालूम
भावों में यूँ बह रहा हूँ आज
रोकूँ तो कैसे रोकूँ कलम को
हर आलम-ए-तनहाई में
हर उस शिकस्तापाई में
तुम मेरी पासबाँ बन के आई हो
दिलोदिमाग पर यूँ छाई हो
जाता हूँ जहाँ, तेरी छाया साथ आती है
हर बला आने से पहले ही मुड़ जाती है
तेरी दुआओं का असर
हुआ कुछ इस कदर
खुदा खुद ही लगा मंजिलों से मिलाने में
इस शीत ऋतु में भी बगिया सजाने में
माँ तेरी तफ़सील तो क्या ही दूँ
तेरे त्याग की उपमा भी क्या ही लिखूँ
नमन करता हूँ मैं, तेरे इस त्याग को
तेरा तुझसे है जो, उस बैराग को
चाहता हूँ हर जन्म में तू ही मेरी माँ हो।

अनुराग झाँब
बी.ए. प्रोग्राम

दिल्ली का पहला सफर

जब मैं चला घर से,
हाथ में एक बैग था।
दोस्त सामने खड़े थे,
ना कुछ कह सका।
रास्ते में मुझे याद
गाँव की आती रही।
मगर मैं शांत होकर,
सफर का आनन्द लेता रहा
जब पहुँचा मैं दिल्ली
चकित मैं रह गया।
जगह-जगह पर सड़कें,
सफाई अभियान चल रहा
कहीं ज़िन्दाबाद तो कहीं मुर्दाबाद,
के नारे लगाये जा रहे।
अपने अपने दबदबे के लिए
हद पार कीये जा रहे।।
कहीं पर महल तो कहीं पर झुग्गी,
हर तरफ नजर आ रहे।
"इस भेद-भाव के कारण
हम लोग कहाँ हैं, जा रहे
वहाँ के इस दृश्य ने मुझे,
हैरान कर दिया कि
लाखों की भीड़ में
मैं अकेला ही दिखाई दिया।

पवन कुमार
हिन्दी विशेष, तृतीय वर्ष

न कोई अंत न प्रारंभ

क्या वक्त ठहर गया है
क्यों मैं आगे नहीं बढ़ पाती
कदम इतने गरिष्ठ हो गए हैं
कि मुझसे उठते ही नहीं
चलना किया था आरंभ
जिस मोड़ से वर्षों पहले
आभास हुआ कि मैं,
निकल गयी सुदूर
राह में नहीं की जरा भी भूल
मगर अफसोस
मैं तो अभी भी
वहीं जड़ हूँ, जहां से
चलना किया था आरंभ
न कोई अंत न प्रारंभ
वर्षों पहले, जिन आँखों में
नमी थी बादलों सी
इंतजार था पपीहे - सा
दिन रात किसी के थे सपने
और एक नन्ही तृषा
जो बुझी ही नहीं कभी
मगर अफसोस!
आज भी वही है
न कोई अंत न प्रारंभ
क्या जिंदगी के लम्हें
इतने गुम्फित हैं कि,
कभी विच्छिन्न नहीं होते
वर्षों बीतने के बाद भी
धुंधले नहीं होते
क्या किसी का इतना गहरा होता है,
एहसास?
मगर अब चुप!
बोलना नहीं
आज हृदय शून्य हो गया है
क्रन्दन करते-करते सो गया है
साँसों का स्पन्दन रुक गया है
और लगता है कि,
यहां वक्त ठहर गया है।

बाज़ार

जब मैं बाज़ार गया तो,
एक पतलून में उलझे हुए बच्चे को पटरी पे बैठे देखा
उस पतलून में से हड्डियों को झांकते देखा
उन हड्डियों के बीच व्यंग्य भरी मुस्कान को देखा
उस मुस्कान ने मुझको झकझोर दिया
मानों! कह रही थी देख तुझको मैंनें परास्त कर दिया
तू दिन भर हजारों कमाता है फिर भी मुस्कान नहीं
मैं चार आने के पर्चे बेचता हूँ ज्यादा कमाने का अरमां नहीं
तभी मीडिया वाला आया
उसने बच्चे का फोटो लेने का पोज बनाया
कभी उससे रखी किताब को पढ़वाता है
कभी सिर ऊपर उठवाता है
कभी सिर झुका हुआ दिखाता गरीबी में हँसी कैसे होती है
उस हँसी को बच्चे से दिखाने को कहता है
गरीबी में छिपी वेदना की एक्टिंग करवाता है
फिर उस गरीब को एक्टिंग की शाबाशी देता है
पीछे से वह उसी गरीबी पर मुस्कुराता है
कंकाल से भी आज उसने पैसा कमा लिया
गरीबी को पैसे का स्रोत बनाकर अपना नाम कमा लिया

नीरज, एम.ए. हिंदी, प्रथम वर्ष

एक सीख

आओ! जरा देखते हैं
आज आप जीतोगे,
या मैं हार जाऊँगा।

आज मुझे जीतने से ज्यादा
हार कर खुशी मिलेगी।
शायद जीत कर मैं,
खुद पर गुमान कर जाऊँगा।

परन्तु हार कर मैं,
आपसे बहुत कुछ सीख पाऊँगा।

किसी ने कहा है
मनुष्य गलतियों का पुतला है
और असली मनुष्य वह है,
जो गलतियों से सीख लेता है।
मैं भी आज आपकी प्रतिभाओं से,
अपनी कमियों से अवगत हो जाऊँगा।

दुश्मन तो दुश्मन, मैं खुद,
दोस्तों की जाँच करना सीख जाऊँगा।

और कभी न कभी मैं
अपने कर्मक्षेत्र में जीत हासिल कर पाऊँगा।

दीपक अग्रवाल
स्नातक, जन्तु विज्ञान, तृतीय वर्ष

मेरी व्यथा

ये कैसा कहर बरसाया है,
आज किसान मुसीबत में आया है,
कभी ओलों, तो कभी बारिश से,
उसका हृदय कँपकपाया है।

आज देखो, बारिश ने,
यह कैसा जुल्म ढ़ाया है।

पाला था जिसे नाजों से,
आज उसी को न काट पाया है।

कल फसल डूबती देखी,
लगता है आज खुद को न संभाल पाया है।

आज आँखों से आँसू नहीं,
खून ही क्यों बरसाया है?
कर्जदारों के कर्ज तले,
किसान ने स्वयं को अकेला पाया है।

आज देश का किसान देखो
बहुत बड़ी मुसीबत के घेरे में आया है।

पैसों को तरसते देख आज उसे
आज मेरा रोम-रोम थर्राया है।

चाहिए

ज्ञान नहीं, बस अंक चाहिए।
विश्लेषण नहीं, बस तथ्य चाहिए।

काम नहीं, पर वोट चाहिए।
सम्मान नहीं, पर नोट चाहिए।

शांति नहीं, विलास चाहिए।
शरबत नहीं, कोक चाहिए।

प्रेम नहीं, भोग चाहिए।
मिटना हर एक रोग चाहिए।

धर्म-कर्म नहीं, व्यवसाय चाहिए।
भोजन नहीं, पकवान चाहिए।

स्त्री नहीं, पुरुष प्रधान चाहिए।
खुशी नहीं, संवृद्धि चाहिए।

हमें नहीं, मुझको चाहिए।
नमस्ते नहीं, हेल्लो चाहिए।
खुशी नहीं, खुशियां चाहिए।

निखिल पाण्डेय
हिन्दी विशेष, द्वितीय वर्ष

तू ही मेरी

तू ही मेरी राहगुजर तू ही रहनुमाँ है
इक ख़्वाब था दिल्ली आने का
आने का कुछ बन जाने का
सब नींद चैन उस ख़्वाब का था अब
हर इक पग बेताब ही था तब
फिर कर्म हुआ मेरे मौला का
हाँ हाँ मैं दिल्ली आ पहुँचा
लेनी थी सबसे अलविदा
क्योंकि मैं दिल्ली आ पहुंचा
महरूम होना था अब घर से
जिसने सब दिया, उस दर से
उस माँ बाबा के लाड प्यार से
उस छुट्टी वाले एतबार से
उन मम्मी के बादामों से
उन बाज़ारों के कामों से
वो हाथ दीदी का पास ना था अब
साथ मेरे कोई खास ना था अब
जब आयी थी वो आखिरी रात
अश्रु ही थे सबके जज़्बात
बातों-बातों में रात गयी
जल्दी से ही वो सुबह हुई
रोटी का निवाला अंदर ना जाता था
मैं मुड़ मुड़कर आगे बढ़ा जाता था
सबकी दुआओं को संभाल के लाया था
कुछ इस तरह मैं दिल्ली आया था।
ये डगर एक दम अनजानी सी

अनुराग झाँब
बी.ए. प्रोग्राम, प्रथम वर्ष

अभी भी देर नहीं....

एक बार ऐसा आया तूफान,
जिसमें गुम हो गए थे काफी इंसान।

तब पूछा था मैंने उस खुदा से
क्या यही है तेरा इंसाफ?

फिर उसने मुझसे लौट कर पूछा -
''जब करते हो तुम प्रकृति का नुकसान,
तब क्या याद नहीं आता भगवान''
तब आया मुझको समझ कि
दर्द होता है तब, जब आती अपनी बारी।

तब कहां गया हमारा दिल-जब नोंच ली हरियाली
सारी
ये सोच घबराया मन।

हरियाली और वृक्षारोपण
हरियाली है जब तक,
तब तक हैं हम
तो लगाओ पेड़ जितना हो दम।।

अर्पिता अग्रवाल
वनस्पति विज्ञान विशेष, प्रथम वर्ष

चाह

चाह पैसों से आने में आती रही
चाह आनों से रुपया बनाती रही
चाह रुपयों से नोट भुनाती रही
चाह नोटों से कोठी चुनाती रही
चाह कोठी में मोटर भगाती रही
चाह मोटर से होटल में जाती रही
चाह होटल में बोतल खुलाती रही
चाह क्या क्या न करती, कराती रही

'चाह चमारी चूहड़ी सब नीचन में नीच
मैं तो शरण ब्रह्म था यदि चाह न होती बीच

चाह युग युग से ज्ञानी की चेली रही,
चाह मूरख को ठगनी नवेली हुई।

चाह पाली जिन्होंने वो पीले हुए,
चाह छोड़ी जिन्होंने रसीले हुए।
चाह जर से लगी, 'जी' जरा हो गया,
वहीं चाह जब हरी से लगी 'जी' हरा हो गया।

चाह हमको उनकी हरदम चाहिए,
वो अगर हमें चाहें, तो फिर क्या चाहिए।

गोविन्द शरण चतुर्वेदी
संस्कृत ऑनर्स, द्वितीय वर्ष

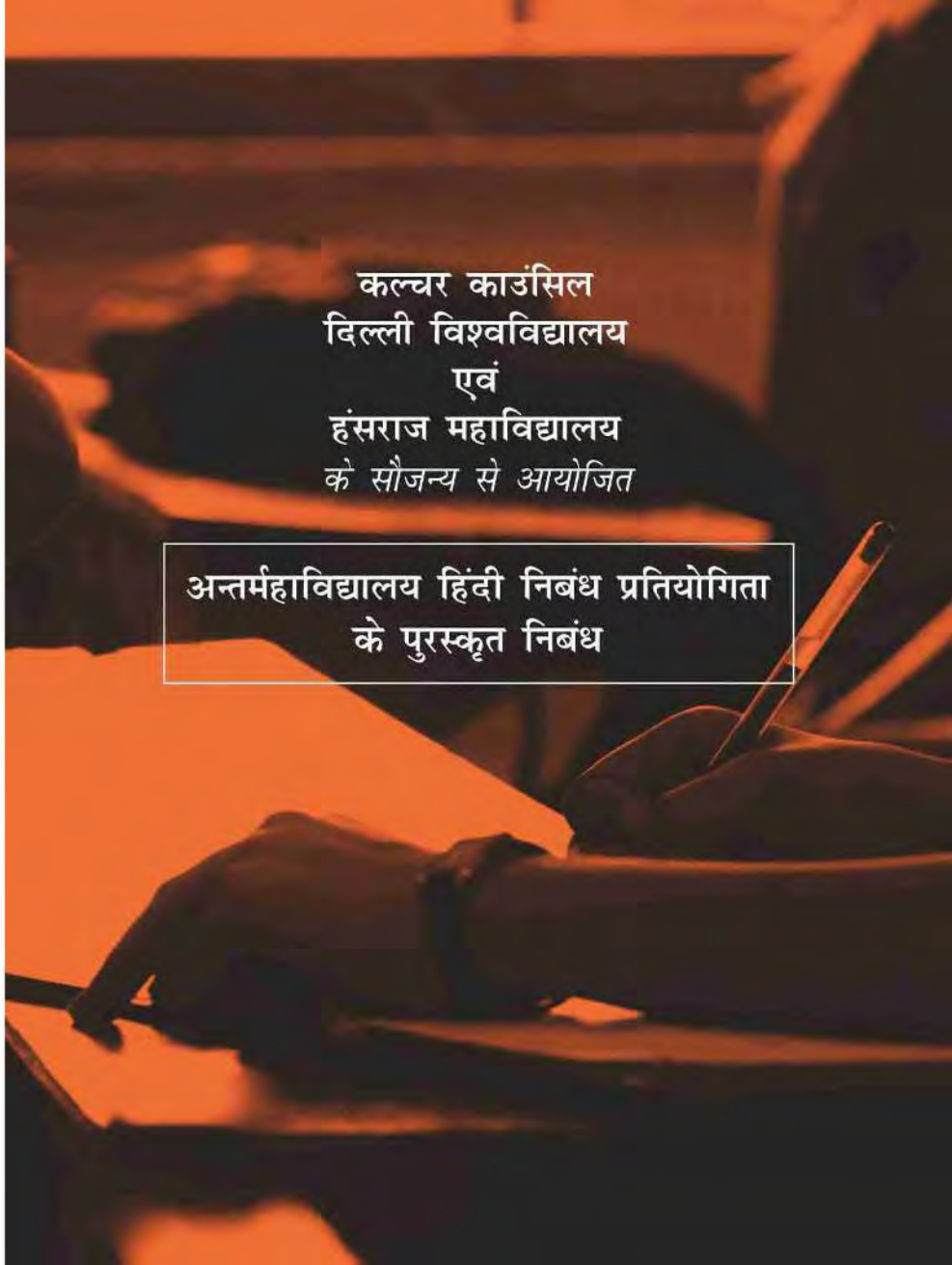

कल्चर काउंसिल
दिल्ली विश्वविद्यालय
एवं
हंसराज महाविद्यालय
के सौजन्य से आयोजित

अन्तर्महाविद्यालय हिंदी निबंध प्रतियोगिता
के पुरस्कृत निबंध

समकालीन सामाजिक परिदृश्य और मीडिया

मीडिया जनतंत्र में समाज की हिस्सेदारी अपरिहार्य है। वर्तमान सामाजिक और पत्रकारिता परिदृश्य 1992 में आई उदारवादी अर्थव्यवस्था से उपजी उदारवादी संस्कृति की परिणति है। भारतीय समकालीन समाज के मुख्य अभिलक्षण हैं, हमारी लोकतांत्रिक राजनीति, संसदीय तथा संवैधानिक व्यवस्था। सांस्कृतिक स्तर पर हम विविधताओं का विशाल किंतु जटिल समन्वय हैं। आर्थिक परिदृश्य मिश्रित अर्थव्यवस्था के विस्तार के परिणामस्वरूप उपजे औद्योगीकरण और बाज़ारवाद, जिसकी अन्य परिणति उपभोक्तावाद तक विस्तृत है। भारतीय समाज तमाम सांस्कृतिक विविधताओं (धार्मिक भौगोलिक, भाषायी, क्षेत्रीय, लैंगिक, जीवनशैली इत्यादि का समावेश है। इस समावेशी व्यवस्था की जड़ है हमारी लोकतांत्रिक प्रणाली। मीडिया लोकतांत्रिक समाज का हिस्सा है। इसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता है। हालांकि यह संवैधानिक स्वीकृति नहीं है तथापि यह सर्वमान्य सहमति और विश्वास है कि मीडिया का कार्य है सत्ता, जनता और उपेक्षित समाज के मध्य संतुलन को स्थापित करना व बनाए रखना। इसका कार्य है सरकार के कार्य-व्यवहार की निगरानी करना। वहीं जनसरोकार है मुद्दों को उठाना भी उसका प्रमुख प्रमुख दायित्व है। गांधी युग में पत्रकारिता और मीडिया को 'सेवा-भावना' प्रेरित कहा गया है। इसे मिशन माना गया। उदारवादी व्यवस्था की आगमन के पश्चात मीडिया का तेजी से औद्योगिक संस्थानों में संक्रमण शुरू हो गया है। मिशन प्रोफेशन बन गया। छोटे-छोटे मीडिया संस्थान विशाल औद्योगिक घरानों में तब्दील होने लगे। सेवा भावना व्यापार और व्यवस्था में तब्दील हो गई। क्रॉस मीडिया ऑनरशिप इसका जीता जागता प्रमाण है। भारत सरकार भी 'मीडिया' को उद्योग मानती है और इसी के अनुरूप उससे व्यवहार करती है। आज की मीडिया-व्यवस्था प्रबंधकीय विकास का आकार ग्रहण कर चुकी है। इस उद्योग की समस्त इमारत ही टिकी है उत्पादन और फरोख्त पर। समकालीन मीडिया विज्ञापन और मनोरंजन उद्योग है। खबरों का उत्पादक है और पेड न्यूज का गढ़ है। टाइम्स ग्रुप के मालिक ने एक सेमिनार में बोलते हुए स्पष्ट कहा कि मैं पत्रकारिता नहीं बल्कि विज्ञापनों का व्यवसाय करता हूं। व्यावसायिक मांगों और प्रबंधकीय जरूरतों ने मीडिया संस्थानों में संपादक और मैनेजर की सत्ता को एक कर दिया। स्पष्ट है अब मीडिया और पत्रकारिता उद्योग का एक मात्र लक्ष्य है। अपने संस्थान को फलता फूलता कायम रखना, जिसके लिए वह मुनाफे के किसी भी स्रोत को अपना सकते है।

इनमें से एक प्रमुख है पेड न्यूज। वैसे पेड न्यूज उतना ही पुराना है जितना मीडिया तथापि बीते 5 सालों में पेड न्यूज के 1500-1800 मामलों ने इसे गंभीर चिंता का विषय बना दिया है। मीरा राडिया टेप कांड ने तो इस पर स्पष्ट मुहर ही लगा दी। पेड न्यूज ऐसी व्याधि है जो अब लाइलाज़ रूप धारण कर चुकी है।

वहीं समकालीन मीडिया में आम आदमी की हिस्सेदारी नगण्य तक सीमित होकर रह गई है। अखबारों से लेकर टीवी और रेडियो तक मुद्दों के स्वर पर आम जनता के सामाजिक सरोकार विलुप्त दिखाई पड़ते हैं। (साहित्यिक, विज्ञान, आर्थिक, अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक पत्रकारिता भी क्षरित होती जा रही है।) अखबारों में आम जनता की थोड़ी बहुत भागीदारी अभी भी संपादक के नाम पत्र के फिल्टरीकृत प्रकाशन तक सुनिश्चित रही है किंतु टेलीविजन केवल राजनीति, फैशन, खेल, सनसनी खेज खबरों, सेक्स से जुड़ी बातों, मूवी-मसालों तक सीमित रह गया है। विकासशील पत्रकारिता का स्थान प्रायोजित बहसों ने ले लिया है। प्राइम टाइम का शोरगुल हमारे आम जीवन का अभिन्न हिस्सा बनाया जा रहा है। लोकसेवा प्रसारण (दूरदर्शन ओर आकाशवाणी) को तथापि सामाजिक सरोकारों की चिंता है और वह उन्हें उचित स्थान देते भी है किंतु ये संस्थाएं स्वतंत्र होकर भी स्वतंत्र नहीं हैं। ये सरकार के अधीनस्थ कार्य कर रहे हैं और यह दबाव समय समय पर स्पष्ट दिखता भी है। सरकारी लोक सेवा प्रसारणों ने समय के साथ खुद को बदलना स्वीकार नहीं किया जिसके कारण इसकी लोकप्रियता दिनोंदिन घटती चली गई। एफ. एम. रेडियो पर निजी प्रसारक तो केवल आजकल विज्ञापनों का प्रसारण किये जा रहे है। बीच बीच में कुछ गाने बजा देते हैं जैसे पहले विज्ञापन बजते थे। यहां लोगों को मुर्गा बनाने का मनोरंजक कारोबार चल रहा है।

स्पष्ट है कि मुख्यधारा की मीडिया में सामाजिक संवेदनाएं गुम होती जा रही हैं। इन मीडिया संस्थानों के भीतर स्वयं लोकतांत्रिक व्यवस्था नहीं है न नौकरी के स्तर पर न वेतन के स्तर पर। भत्ता में कैसे रक्षा करेंगे विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का। मुख्यधारा की मीडिया में वर्तमान समाज की वर्चुअल उपस्थिति चिंतनीय तो है किंतु अब इसके भी विकल्प सामने आ रहे हैं। सबसे प्रभावशाली और शक्तिशाली माध्यम बन कर उभरा है - सोशल मीडिया। हालांकि यहां मुख्यधारा की मीडिया तेजी से शिफ्ट हुई है, तथापि आज सोशल मीडिया पर मौजूद प्रत्येक खाताधारी व्यक्ति स्वयं में एक समर्थ और शक्तिशाली मीडिया चैनल है। इसके इस स्वरूप को हम छोटे से लेकर बड़े स्तर तक हम साधारण स्पष्ट देख सकते हैं। चाहे वह प्रेरणा प्रथम सिंह का मामला हो या अन्ना आंदोलन, निर्भया कांड या 2014 का लोक सभा और 2015 का विधान सभा चुनाव, इसने जनता और सोशलमीडिया की शक्ति को जग जाहिर कर दिया है। वहीं दूसरी समावेशी विकल्प के रूप में सामुदायिक रेडियो और सामुदायिक मीडिया का विकास आधुनिक समाज की युगांतकारी घटनाएँ हैं। आज देश भर में 180 सामुदायिक रेडियों है। कश्मीर में सामुदायिक टेलीविजन और गुजरात में सामुदायिक अखबार की शुरूआत हो चुकी हैं। इन सामुदायिक मीडिया संस्थानों के काम काज का मॉडल लोकतांत्रिक और अव्यावसायिक है। जनता अपनी समावेशी भागीदारी से अपने मीडिया संस्थान स्वयं चला रही है। यह हमारी लोकतांत्रिक राजनीति है द्विपक्षीय शासन व्यवस्था को और अधिक सुदृढ़ करता प्रतीत हो रही है। मीडिया समाज में सूचनाएं पहुंचाती है जिससे विचार फिर नजरिया बनता है। नजरिया से अवधारणा बनती है और अवधारणा से व्यक्तित्व और फिर समाज अर्थात् स्वस्थ्य समाज का आधार मीडिया है और लोकतांत्रिक व्यवस्था में तो वह अनिवार्य रूप से उपयोग है। लेकिन गत कुछ चुनावी प्रक्रियाओं में मीडिया का अलोकतांत्रिक इस्तेमाल और मीडिया द्वारा पेड न्यूज और प्रोपेगेंडा प्रसार ने समाज और मीडिया के प्रति नैतिक आस्था को क्षतिग्रस्त किया है। आज आवश्यकता है कि मीडिया को पारदर्शी, ईमानदारी बरतनी होगी तथा स्वयं को उद्योग रूप में बनाये रखते हुए भी सेवा कार्य को प्रधानता देनी होगी। मीडिया की जिम्मेदारी है कि वह लोकतांत्रिक समाज को मजबूत करे। अन्यथा इतिहास साक्षी है कि जब जब लोकतंत्र पर संकट के बादल छाये हैं सबसे पहले मीडिया ही काल कवलित हुआ है।

नंद लाल मिश्र

शैक्षणिक संस्थानों में सांस्कृतिक गतिविधियों का महत्व

सांस्कृतिक गतिविधियों का दायरा बहुत विस्तृत रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखता है फिर चाहे वह विद्यालय, महाविद्यालय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर का क्यों न हो। इसके लिए प्रशासन द्वारा कई कार्यक्रम करवाए भी जाते हैं एवं अनुदान भी दिए जाते हैं। परन्तु शैक्षणिक संस्थानों में सांस्कृतिक गतिविधियों का विशेष महत्व होता है क्योंकि यहीं से बच्चे के व्यक्तित्त्व का विकास आरंभ होता है और वह बड़े होकर राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुंच कर राष्ट्र की छवि भी प्रस्तुत करता है।

शैक्षणिक संस्थानों में देखा जाए तो बच्चे को विद्यालय स्तर से ही पठन-पाठन के अतिरिक्त अन्य गैर शैक्षणिक गतिविधियों का अभ्यास करवाया जाता है। जिससे उसके संपूर्ण व्यक्तित्व को निखारा जा सके। सांस्कृतिक गतिविधियों में चाहे वह नृत्य हो, संगीत हो, कला हो सभी का अभ्यास करवाया जाता है। जिससे वह अपने सहपाठियों के साथ काम करने की कला, उस सांस्कृतिक गतिविधि विशेष का ज्ञान, आदि को समझ सके।

शैक्षणिक संस्थानों में सांस्कृतिक गतिविधियों के महत्व को ध्यान में रखकर ही 'राष्ट्रीय पाठ्यचर्या - 2005' भी इस प्रकार की गतिविधियों की सलाह देता है। इस प्रकार की गतिविधियों से बच्चा विद्यालय स्तर से ही स्वयं को अन्य क्षेत्रों में आगे बढ़ने की कोशिश करता है।

'एस्ट्रा कैरिकुलम एक्टीविटीज' में भी सांस्कृतिक गतिविधियों को विशेष रूप से महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। विद्यालय स्तर पर इस प्रकार की गतिविधियों को अनिवार्य किया गया है ताकि बच्चे का संपूर्ण व्यक्तित्व निखर सके। जिससे कि वह शैक्षणिक दायरे से आगे बढ़कर अन्य दायरों में प्रवेश करने के भी विकल्प को इच्छानुसार चुन सके।

महाविद्यालय स्तर पर भी कई शाखाएं बनाई जाती हैं। शिक्षा के साथ साथ विद्यार्थियों को अन्य संस्थाओं से जुड़ने का मौका भी दिया जाता है। चाहे वह नाट्य संस्था हो, नृत्य संस्था हो, नुक्कड़ नाटक हो या फिर अन्य गतिविधियां क्यों न हों। इन सांस्कृतिक गतिविधियों का लाभ मात्र उससे जुड़े विद्यार्थी को ही नहीं बल्कि दर्शकों, श्रोताओं को भी मिलता है। वे भी प्रेरित होते हैं और अपने स्तर पर समाज राष्ट्र को आगे ले जाने में मदद करते हैं। इन सांस्कृतिक गतिविधियों का महत्त्व इस बात से लगाया जा सकता है कि प्रत्येक वर्ष 15 अगस्त एवं 26 जनवरी को अनिवार्य रूप से शैक्षणिक संस्थाओं में सांस्कृतिक गतिविधियां करवाई ही जाती है। संभव तो यह भी है कि मात्र तिरंगा फहरवा कर काम चलाया जा सकता है परंतु सांस्कृतिक गतिविधियां ही विद्यार्थी में स्वयं के होने का बोध, राष्ट्र प्रेम का बोध, सामाजिक दायित्व का बोध कराती हैं।

महाविद्यालय स्तर पर प्रत्येक वर्ष 'महोत्सव' करवाया जाता है। लाखों करोड़ों रुपये खर्च किए जाते हैं। यह कार्यक्रम मात्र मनोरंजन मात्र के लिए ही नहीं होते। गहराई से सोचने विचारने पर देखा जाए तो इनके निश्चित लक्ष्य भी होते हैं।

शैक्षणिक संस्थान विद्यार्थियों के लिए एक मंच हैं, जहाँ से वे व्यक्तित्व को बनाते हैं। यहीं से वे अपने भावी जीवन के लक्ष्य भी निर्धारित करते हैं। सभी विद्यार्थी शैक्षणिक गतिविधियों में रुचि रखते हों, ऐसा संभव नहीं है। सभी विद्यार्थियों के अंदर भिन्न-भिन्न कलाएं होती हैं और उन कलाओं को उभारने का सही मौका ये शैक्षणिक संस्थाएं विभिन्न गतिविधियां प्रदान करके कराती हैं।

हमारे सामने कई जीवंत उदाहरण भी हैं यदि शैक्षणिक संस्थान इन सांस्कृतिक गतिविधियों को न करवाएं तो सिनेमा, कला आदि में नामी हस्तियों का आ पाना संभव न हो पाता। अमिताभ बच्चन इसका उत्कृट उदाहरण हैं। वे आज सिनेमा की जानी मानी हस्ती हैं और उन्होंने सिनेमा को बहुत कुछ दिया भी है। ऐसे न जाने कितने दिग्गज मौजूद हैं जो कला, नृत्य, संगीत, आदि में विशेष योगदान दे रहे हैं। साथ ही साथ राष्ट्र को भी आगे बढ़ाने में योगदान दे रहे हैं। यदि इनको शैक्षणिक संस्थानों में मौका न मिला होता तो शायद ये अपनी प्रतिभा को पहचान न पाते।

शैक्षणिक संस्थानों में इन सांस्कृतिक गतिविधियों द्वारा विद्यार्थी स्वयं के भीतर छिपी प्रतिभा को पहचान पाता है और उसे निखारने का मौका भी मिलता है। वह भटकाव से बच पाता है। अपने लक्ष्य का चुनाव कर पाता है।

ये गतिविधियां विद्यार्थी को विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी भी प्रदान करती हैं। आज के आधुनिक युग में जहाँ व्यक्ति मशीन मात्र बन गया है, इन सांस्कृतिक गतिविधियों के द्वारा उसमें संवेदनशीलता, समाज दायित्व, राष्ट्र दायित्व का बोध कर पाता है। अपनी संस्कृति, सभ्यता, परंपराओं को जान पाता है। अपने इतिहास पर विचार करने में सक्षम होता है। शैक्षणिक संस्थानों में चाहे वह विद्यालय स्तर पर हो या महाविद्यालय स्तर पर विभिन्न शिक्षाविदों ने कई चर्चाएं भी की हैं तथा सांस्कृतिक गतिविधियों के होने को महत्वपूर्ण भी बताया है। 'कोठारी कमीशन 1964-66' में विद्यालय से लेकर महाविद्यालय तक के कई विषयों पर सिफारिशें की गई हैं, जिनमें सांस्कृतिक गतिविधियों की भी मुख्य रूप से सिफारिश की गई है। 'गांधी की तालीम' में स्वयं गांधी सांस्कृतिक गतिविधियों के द्वारा शिक्षा की हिमाकत करते हैं। वे सूत कातना, चरखा चलाना आदि। महत्वपूर्ण बताते हैं। जिससे विद्यार्थी अपनी संस्कृति और सभ्यता से जुड़ा रहे। इस प्रकार यदि शैक्षणिक संस्थाओं में देखा जाए तो शैक्षणिक गतिविधियां मात्र होंगी तो विद्यार्थी पठन-पाठन में नीरसता महसूस करेंगे। खास तौर पर विद्यालय स्तर के विद्यार्थी जो परिपक्व नहीं होते हैं। इसीलिए उनके पाठ्यक्रमों में कई क्रियाकलाप दिए होते हैं जिससे वे पढ़ाई में नीरसता महसूस न करें और अन्य विभिन्न क्षेत्रों की जानकारी भी बिना बोझ के कर सकें। ये सांस्कृतिक गतिविधियां विद्यार्थी को आगे बढ़ने की प्रेरणा देती हैं। उनकी मानसिकता में विस्तार आता है। साथ में काम करने की कला, किसी कार्यक्रम की योजना बनाकर उसे सफल करना तथा अन्य कई गुणों को विकसित करने में मदद करती हैं। अतः शैक्षणिक संस्थानों में सांस्कृतिक गतिविधियों का कोई निश्चित महत्त्व ही नहीं इन गतिविधियों से सीखी जाने वाली बातें जीवन पर्यंत काम आती हैं।

रचना कुमारी

एम.ए. हिंदी, द्वितीय वर्ष

आधुनिक जीवन शैली और सिनेमा

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसके द्वारा किया गया कोई भी कार्य समाज और प्रकृति पर प्रभाव डालता है। मानव का संपूर्ण जीवन प्रकृति से ही शुरू और अंत होता है प्रकृति मानव की सहचरी है। मानव जीवन में प्रत्येक व्यक्ति की तीन मूलभूत आवश्यकताएँ हैं जिन्हें पूर्ण करने के लिए उसे कार्य करना पड़ता है, वह हैं रोटी, कपड़ा और मकान। समय के साथ-साथ व्यक्ति की आवश्यकता एवं उसकी जरूरतों में परिवर्तन आया है। इससे न केवल मानव या उसकी जीवन-शैली अपितु संपूर्ण परिवेश पर भी प्रभाव देखने को मिलता है।

हमारे देश में आधुनिकता का दौर 19वीं शताब्दी से प्रारंभ होता है। इस आधुनिक युग ने व्यक्ति को पूर्ण रूपेण परिवर्तित ही नहीं किया उसकी जीवन-शैली को भी प्रभावित किया है। आधुनिकता ने जहां एक ओर व्यक्ति के रहन-सहन, परिवेश, त्योहार-उत्सव, रीति-रिवाज आदि को प्रभावित किया है वहीं उसकी व्यक्तिगत सोच में भी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। व्यक्ति की जीवन शैली को सिनेमा से जोड़ा जाए तो ज्ञात होगा कि सिनेमा के आगमन ने न केवल युवाओं के अपितु संपूर्ण मानव जीवन में एक नई ऊर्जा का संचार किया है। कोई गांव का पुरुष जो धोती कुर्ता पहनता है वह भी सिनेमा से प्रभावित होकर कोट-पेंट पहनने लगता है। आधुनिक जीवन शैली में हम मानव के जीवन में भिन्न भिन्न परिवर्तन देखते हैं। उसके जीवन में जब से मशीनों का आगमन हुआ है तब से स्वयं पर भार कम महसूस करता है। उसके जीवन को मशीन ने इतना सरल और सुलभ बना दिया है कि उसे अब मशीन ही अतिप्रिय है। जीवन में दैनिक कार्यों को करने के लिए मशीनों का प्रयोग मानव-जीवन को हल्का और भार मुक्त बनाता है। वहीं जब सिनेमा जैसा उत्कृष्ट आविष्कार उसके समक्ष हो तो उसके जीवन में आनंद ही आनंद है। सिनेमा भी आधुनिकता की तरह पहनावे, रीति-रिवाज, परिवार, उत्सव, भाषा आदि पर प्रभाव डालता है। आज मानव के जीवन में आधुनिकता ने जहाँ अपने पाँव पसार लिए हैं वहीं सिनेमा भी आधुनिक युग की ही एक देन है, जो मनुष्य को उसके मनोरोगों, अंतर्द्वंद्वों आदि से मुक्ति का मार्ग निकालकर रोमांच और मनोरंजन से जोड़ता है।

भारत में सिनेमा का आगमन सन् 1896 में वाटरसन थियेटर से दो फ्रांसीसी भाइयों द्वारा हुआ। उसके पश्चात् 1904 में सेठनी जी ने पहला सिनेमाघर भारत में खोला जिसमें 'द लाइफ ऑफ क्राइस्ट' फिल्म (विदेशी) से प्रेरित होकर सिनेमा के पितामह दादा साहब फाल्के ने 1913 में अपनी पहली मूक फिल्म हरिश्चन्द्र बनाई। दादा साहब फालके द्वारा की गई फिल्म (सिनेमा) की शुरूआत ने भारतीय जनजीवन को प्रभावित किया, बड़ी संख्या में लोग सिनेमा से जुड़े। आज भी सिनेमा हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सिनेमा न केवल व्यक्ति को मनोरंजन से जोड़ता है अपितु उसमें दिखाई जाने वाली फिल्में हमें एक उद्देश्यनिहित फिल्म लगती है। सिनेमा आधुनिक युग में न केवल मानव जीवन को व्याख्यायित करता है अपितु मानवीय चरित्र, परिवेश, व्यवहार, जरूरत आदि सभी वस्तुओं के साथ युक्तिपरक संदेश भी अपने दर्शकों के समक्ष रखता है। व्यक्ति यदि केवल मन बहलाने या अपने द्वंद्व से मुक्त होने के लिए ही सिनेमा जाता है तो यह केवल उसका एक नज़रिया है। हम देख सकते हैं कि सिनेमा व्यक्ति के जीवन में न केवल रहन-सहन, पहनावे या अन्य साधनों पर प्रभाव डालता है अपितु वह उसकी वाक्चातुर्य या वाणी एवं भाषा को भी प्रभावित करता है। आज यदि कोई जींस कोट पहनता है तो यह सिनेमा का तथा आधुनिक जीवन-शैली का ही प्रभाव है यदि उसके खाने में आज पिज़्जा या बर्गर है तो

एल. पी.

ट्रैंगल में बंद जगह, जहाँ लगी हुई हैं
कुछ छतरियाँ, बरगद के वृक्षों की भाँति
अनंत वर्षों से, इन पर चिपके रहते हैं
छात्रसंघ चुनाव के स्टीकर
धुंधली यादों के साथ, जो बदलते रहते हैं प्रतिवर्ष
इन छतरियों की छत्रछाया में है बैठने
का स्थान, एक छतरी के नीचे चार
मित्रों के बैठने की उचित व्यवस्था,
लगे हुए हैं बहुत से छायादार पेड़
जो देते हैं छाया बहुत सी
मित्र मण्डलियों को, माशूक और माशुकाओं को
जिनके दिल भरे होते हैं स्कूल की नादानियों से.....
यहाँ लगे हैं बहुत से पेड़, जिनमें हैं
कुछ 'शीशम' जो देते हैं हमेशा चमकते
रहने की सीख वहीं है कुछ 'गुलमोहर'
जो सिखाते हैं हमेशा प्रसन्न रहना।
वृक्षों के बीच से झाँकते सी.सी.टी.वी.
कैमरे रखते हैं नजर प्रत्येक गतिविधि पर
यहां होती हैं, बहुत सी पार्टियाँ
परंतु छात्रसंघ चुनाव के समय
चुनावी प्रत्याशी के 'जन्मदिन'
की पार्टियाँ पकड़ लेती हैं
प्रत्येक प्रत्याशी का चुनाव से
पूर्व निकल आता है जन्मदिवस
चुनाव समाप्ति के बाद ज्यादातर
छात्र नेता हो जाते हैं विलुप्त
'एनाकॉंडा' की भांति (तरह)...
इस स्थान का अपना एक इतिहास भी है,
परंतु इतिहास तो इतिहास होता है।

सारांश वशिष्ठ, हिन्दी (विशेष), तृतीय वर्ष

हल

मैं किसान की पीड़ा को
हृदयाघाती वीणा को
बच्चों की रुदन क्रीड़ा को
सहन नहीं कर सकता हूँ।
हल भी रोता है जार-जार
पूछता है यह बार-बार
ये हालत कैसी है कुमार (किसान)?
स्वयं ही वह उत्तर देता
मैंने युग-युग से देखा है
तुमको मरते-पिसते हर बार
परन्तु कभी तुमने यह सोचा है?
क्या अन्नदाता तुम्हारा यही पाप?
तुम चाहते हो सबका पोषण अपार....
क्या तेरे हिस्से में अकाल मृत्यु ही है?
यही सोचता यह हल बार-बार
शायद मैं तेरा 'हल' कोई हल निकाल सकता
तेरा जीवन सँवार सकता!

सारांश वशिष्ठ, हिन्दी (विशेष), तृतीय वर्ष

उर्दू की नर्म शाख पर रूद्राक्ष का फल है
सुंदर को शिव बना रही हिंदी की ग़ज़ल है

ग़ालिब के रंगे शेर में खैयाम के घर में
गंगाजली उठा रही हिंदी की ग़ज़ल है

जिस रहगुज़र पर मील के पत्थर नहीं गड़े
उन पर नज़र टिका रही हिंदी की ग़ज़ल है

सुख, दुख, तलाश, उलझनें, संघर्ष की पीड़ा
सबको गले लगा रही हिंदी की ग़ज़ल है

गोपाल कृष्ण सक्सेना 'पंकज'

राजनीति का नववर्ष

नव वर्ष की शुरुआत हुई, वादों की बरसात हुई
नेता जी मुख से देखो, व्यंग्यों की शुरुआत हुई
मंच पर खड़े होकर, गरीबी मिटाने की बात हुई
वादे से फिर से जनता की, छलने की शुरुआत हुई।

देखो कितने विलक्षण ढंग से, राजनीति प्रकट हुई
राष्ट्रवाद के नाम पर फिर, विवादों की शुरुआत हुई
देखो फिर से जनतंत्र, जनता के छलने की वारदात हुई

माँ

आँखों में स्नेह लिए, मेरे आगे पीछे फिरती थी
मेरे जीवन में बसंत हेतु, सदा पतझड़ ही सहती थी

अमृत पान कराने को मुझको विष सदा ही पीती थी।
मेरी खुशियों के खातिर वह अश्रुपान कर भी मुस्काती थी।

कभी बन हिमालय, उत्तरी हवाओं से बचाती थी।
कभी गंगा बन सदानीरा सी चितवन को सिंचित करती थी।

मेरे ख्वाबों के खातिर वह सदा जीती मरती रहती थी।
माँ मुझको तू सब माताओं में सबसे प्यारी लगती थी।

कुछ कह नहीं पाया

मेरे प्यार को बयाँ करने के लिए,
कुछ कह नहीं पाया।
मेरे असीम प्रेम को दर्शाया।
तब पास तेरे आने को
कलम को सहारा बनाया
मेरी बोलती कलम ने तेरे लिए,
लिखने कुछ खुद को सदा खामोश पाया।
बमुश्किल से फिर मैं तेरे सामने तो आया
पर तुझे देखकर मैं फिर कुछ कर नहीं पाया

- राष्ट्रभाषा सर्वसाधारण के लिये जरूरी है और हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी ही बन सकती है.
- प्रांतीय ईर्ष्या द्वेष दूर करने में जितनी सहायता हिंदी प्रचार से मिलेगी उतनी दूसरी चीज में नहीं.
- हिंदी सिखे बिना भारतीयों के दिलो तक नही पहुँचा जा सकता.
- हिंदी शताब्दियोसे राष्ट्रिय एकता का माध्यम रही है.
- हिंदी का सन्मान, देश का सन्मान है.
- हमारी स्वतंत्रता कहाँ है, राष्ट्रभाषा जहाँ है.

सुयश दीक्षित, हिन्दी विशेष, प्रथम वर्ष

समय की सीख

जब मैं कॉलेज आया था, करने को ना कुछ भी था
एक चुभन अंतर्मन को तड़पाती रहती सदा
अनेक से आगे बढ़ पहुंचा था यहां लेकिन
सपने टूटने का वो गहरा एक मर्ज भी था
फीका फीका था सब कुछ, नहीं कुछ रास आता था
कॉलेज आना घर को जाना, यूँ सप्ताह बीत जाता था
मुकद्दर की तकसीमी को मैं अक्सर दोष देता था
पर अब समझा नादानी थी वो हरकत इक बचकानी सी
जब संभला तो पाया कि खुशियाँ झोली आयी थीं
जीवन के इस रहगुजर पर इक सौग़ात पाई थीं
एन.एस.एस. पढ़ाकू में खोया बचपन पाया था
यहीं रुकूँ था दिल में, किसी के काम आया था
समय ही एक मरहम है जो हर इक घाव को भर जाए
जीवन का दस्तूर यही है, हम आगे-आगे बढ़ जाएँ
अब मैं गर्व से कहता हूं कि, तकदीर यहाँ पर लाई है
हाँ! हंसराज ने ही मुझे एक नई पहचान दिलाई है
अब मैं गर्व से कहता हूं कि, तकदीर यहां पर लाई है
हाँ! हंसराज ने मुझे एक नई पहचान दिलाई है!

अनुराग झाँब, बी.ए. प्रोग्राम, प्रथम वर्ष

एक पहेली 'आँखें'

आँखें खूबसूरती बखानती हैं
आँखे सब कुछ पहचानती हैं
ये दिखलाती हैं माँ का गुस्सा और उनका प्यार
इन्हीं दोनों आँखों में छुपे होते हैं हजारों राज।
प्रेम का पहला नज़राना होता है इनसे,
इनको इस नादानी से आ जाता है, एक अजनबी
भी करीब दिल के।
कशमकश में खो जाता है, इनको देखता है जो,
सच बोलती हैं, ये हरदम लगता है, हर किसी को।
सुख और दुख, दोनों में ही होता है, इनका एक सा मन्जर,
पर समझ पाता है, वो जो पढ़ पाता है इन्हें गहराई तक।
सबको लगता है कि ये बस देखने के काम आती हैं,
पर देखते ही देखते ये कई कारनामे कर जाती हैं।

अर्पिता अग्रवाल, वनस्पति विज्ञान, प्रथम वर्ष

नारी

कब मिला नारी को समाज में समानता का अधिकार?
कब दिया समाज ने इसको स्वतंत्रता से पढ़ने का अधिकार?
कब मिला इन्हें अपनी भावना व्यक्त करने का अधिकार?
आखिर तिरस्कार से कब मिला इन्हें आदर-सम्मान?
आखिर कब तक होता रहेगा समाज में इस नारी का शोषण?
आखिर कब होगा समाज में, नारी जाति का कल्याण?
कब तक हम इसको संदेह से देखते रहेंगे?
कब तक हम इसको दुर्बल-अबला बोलते रहेंगे?
कब तक हम इस नारी पर अत्याचार करते रहेंगे?
अब देना होगा नारी को स्वतंत्रता का अधिकार
अब देना होगा इसको खुलकर पढ़ने का अधिकार।
अब देना होगा इसे पूर्णतः अभिव्यक्ति का अधिकार,
तभी तो सम्भव हो पाएगा, इस नारी का उद्धार।
तभी तो आ पाएगा समाज में नारी का आदर सम्मान,
यही समय है इस नव धारा को प्रवाहित करने का प्रसार।

पंकज चौहान, बी.ए. प्रोग्राम, प्रथम वर्ष

जीवन

जीवन है समय चला जा रहा
कभी तेज चलता, कभी संभलता है
आगे ही आगे बढ़ा जा रहा है।
जीवन है समय, चला जा रहा है।
हैं आती हवाएँ, हैं जाती हवाएँ,
हवाओं के सहारे, चला जा रहा हूं।
जीवन है समय, चला जा रहा है।
कभी खुशी आती, कभी गम आता,
जीना है मुश्किल, ये जी घबराता,
संसार में संघर्ष, किये जा रहे हैं।
आसमां से आगे है, मंजिल मेरी
वहां चांद तारों में है, मंजिल मेरी,
लिए दिल में मस्त लहर जा रहे हैं
जीवन है समय, चला जा रहा है

राजमणि त्रिपाठी, हिंदी विशेष, तृतीय वर्ष

Shreyam Jain

Shayari

Dharna Saini

Aliza Noor

Aliza Noor

Riya Garg

Sanya Dhandania

Shreyam Jain

Aliza Noor

Riya Garg

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	शीर्षक	पृ. सं.
1.	दण्डिनः पदलालित्यम्	46
2.	संस्कृतसाहित्ये पर्यावरणम्	48
3.	चाणक्यनीतिः	49
4.	यस्य यत् नास्ति सः तत् वृणोति	49
5.	श्लोकाः	49
6.	विश्वशान्तिः संस्कृतसाहित्यञ्च	50
7.	अद्भुतस्वप्नः	52
8.	सर्वेभ्यः शिक्षिकाभ्यः शिक्षकेभ्यश्च समर्पितम्	52
9.	सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्	52
10.	स्तुतिः	53
11.	संस्कृतगीतिका	53
12.	संस्कृतभाषायाः महत्त्वम्	53
13.	लोकतन्त्रः	54
14.	भ्रष्टाचारः - समस्या समाधानञ्च	56
15.	स्वामिविवेकानन्दः	57
16.	उचिता शिक्षा	58
17.	दूरदर्शनं किमिदं विश्वदर्शनम् ?	58
18.	हृदयपरिवर्तनम्	59
19.	उपनिषदां महत्त्वम्	60
20.	विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्	60
21.	एहि, हसाम	61
22.	सुभाषितानि	61
23.	विनोदकणिकाः	62

दण्डिनः पदलालित्यम्

संस्कृतगद्यकविमण्डले महाकविदण्डी सुप्रसिद्धोऽस्ति । तस्य विषये **'दण्डिनः पदलालित्यम्'** इति भणितिः लोकप्रसिद्धा । किन्नाम पदलालित्यम् ? इति पिपृच्छायामुच्यते 'सुप्तिङन्तं पदमि'ति सुबन्तं तिङन्तञ्च पदमिति आख्यायते । ललितस्य भावो लालित्यं माधुर्यमिति । यत्र पदेषु वाक्येषु शब्दसङ्घटनायां वा माधुर्यं श्रुतिसुखदत्वं वा समुपलभ्यते, तत्र पदलालित्यमिति मन्यते । पदलालित्यं शब्दसौष्ठवं चावर्जयति सचेतसां चेतांसीति, गुणोऽयं गरिमाणं तनुते काव्यस्य । पदलालित्यस्य गौरवं महाकविदण्डिकृतदशकुमारचरिते एव विशेषेण दृश्यते ।

आचार्यदण्डिकृतगद्यमहाकाव्यमिदं वैदर्भीरीति प्रधानं वर्तते । सानुप्रासिकपदविन्यासमेव पदलालि- त्यस्य मुख्यकारणं भवति, परन्तु अत्र अनुप्रासिकचमत्कारेण सह यमकालङ्कारस्य योजना अपि अतीव मनोरमा वर्तते । अस्मिन् गद्यमहाकाव्ये महाकविना कृतं पदलालित्यमेवात्र विवेचनीयमस्ति । महाकविः दण्डी सुबन्धुरिव 'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धबन्धे' न रमयति मनः । नापि बाणभट्टवदयं रुचिरस्वरवर्ण- पदेषु आधीयते मनः । परं प्रसादमधुराणि ललितललितानि भावगर्भितानि पदान्येवास्मै रोचन्ते । निश्चितमिदं यादृशं पदलालित्यं दण्डिकाव्ये दृश्यते न तादृशं कस्यचिदन्यकवेः काव्ये विद्यते । विजयार्थं गन्तुकामानां कुमाराणां यमकालङ्कारालङ्कृतं वर्णनं दण्डिनः पदलालित्यं सूचयति –

''कुमारा माराभिरामा रामाद्यपौरुषा रुषा भस्मीकृतारयो रयोपहसितसमीरणा रणाभियानेन यानेना- भ्युदयाशंसं राजानमकार्षुः ।''

एतादृशं मनोमोहकं हृदयावर्जकं पदलालित्यं कवेर्वैदुष्यमेव प्रकटयति रञ्जयति च विदुषां चित्तम् ।

महाकवेर्दण्डिनः भारती मधुररसभरिता, तत्र माधुर्यं राजहंसस्य सुषमावर्णनप्रसङ्गे दृश्यन्ताम् –

''अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासम्भारभारभासुरभूसुरनिकरः, विरचितारातिसन्तापेन प्रतापेन सततुलितवियन्मध्यहंसः, राजहंसो नाम घनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसौदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव ।''

मालवेश्वरस्य प्रस्थानवर्णनमवलोकयन्तु –

''मालवनाथोऽप्यनेकानेकयूथसनाथो विग्रहः सविग्रह इव साग्रहोऽभिमुखीभूय भूयो निर्जगाम ।''

राज्ञः राजहंसस्य मालवराजसैन्ययुद्धं प्रेक्षस्व –

''राजहंसस्तु प्रशस्तवीतदैन्यसैन्यसमेतस्तीव्रगत्या निर्गत्याधिकरुषं द्विषं रुरोध ।''

ललनाकुलललामभूताया राजहंसस्य राजमहिष्याः वसुमत्याः कीदृशं ललितपदैः यमकालङ्कारमा- श्रित्य वर्णनं कृतं महाकविना, दृश्यन्ताम् –

''तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावती कुलशेखरमणी रमणी बभूव ।''

राजहंसस्य ऐश्वर्यं वर्णयता महाकविना लिख्यते –

''विजितामरपुरे पुष्पपुरे निवसता सानन्तभोगलालिता वसुमती वसुमतीव मगधराजेन यथासुखम- न्वभावि ।''

राजवाहनः यदा पुष्पोद्भवेन सह उद्याने अवन्तिसुन्दरीं द्रष्टुं गच्छति तदा महाकवेः वर्णनं पश्यन्तु –

''तत्र रतिप्रतिकृतिमवन्तिसुन्दरीं द्रष्टुकामः काम इव वसन्तसहायः पुष्पोद्भवसमन्वितो राजवाहनस्तु- पवनं प्रविश्य, ... कोकिलकोरालिकुलमधुकराणामालापाञ्छ्रावं श्रावं किञ्चिद्विकसदिन्दीवरक- ह्लारकैरवराजीवराजीकेलिलीलाकलहंससारसकाण्डवचक्रवालकलरवव्याकुलविमलशीतलसलिलललितानि सरांसि दर्शं दर्शमन्दलीलया ललनासमीपमवाप ।''

इन्द्रजालप्रदर्शनप्रसङ्गे फणिनां कीदृशं मनोहारिवर्णनमेतत्, पश्यन्तु –

''तदनु विषमं विषमुल्बणं वमन्तं फणालङ्करणा रत्नाराजिनीराजितराजमन्दिराभोगा भोगिनो भयं जनयन्तो निश्चेरुः गृध्राश्च बहवस्तुण्डैरहिपतीनादाय दिवि समचरन् ।''

धर्मवर्धनस्य कन्यामुपवर्णयन् कविरित्थं तस्याः सौन्दर्यमुपस्थापयति, तत्र नवमालिकापदस्य पुनरा- वृत्तिः तथा च कन्यायाः लालित्यमपि सूचयति –

''तस्य दुहिता प्रत्यादेश इव श्रियः, प्राणा इव कुसुमधन्वनः, सौकुमार्यविडम्बितनवमालिका, नव- मालिका नाम कन्यका ।''

पर्वतमुपवर्णयन् कीदृङ्मनोहारिणी पदावली –

''अहो रमणीयोऽयं पर्वतनितम्बभागः, कान्ततरेयं गन्धपाषाणवत्युपत्यका, शिशिरमिदमिन्दीवरारवि- न्दमकरन्दबिन्दुचन्द्रकोत्तरं गोत्रवारि, रम्योऽयमनेकवर्णकुसुममञ्जरीभरस्त्ररुवनाभोगः ।''

दण्डिनः पदलालित्यस्योदाहरणप्रसङ्गे एका सानुप्रासललितपदावली अपि द्रष्टव्या –

''निशास्वपि श्मशानमधिशये, निजनिलयनिशितनिः शेषजने नितान्तनिशते निशीथेः, अयुग्मशरः शरशयने शायविष्यति, सखे! सैषा सज्जनाचरिता सरणिः, यदणीयसि कारणेऽनणीयानादरः संदृश्यते ।''

महाकविना दण्डिना दशकुमारचरितस्योत्तरपीठिकायां एकस्मिन् सप्तम उच्छ्वासे ओष्ठ्यरहित- वर्णानां प्रयोगः कृतः । एतादृशानां वर्णानां निबन्धनमभूतपूर्वं सम्पूर्णेऽपि संस्कृतसाहित्ये । परमोष्ठ्य- वर्णरहिते अस्मिन्नुच्छ्वासे अपि पदलालित्यं शब्दसौष्ठवञ्च दर्शनीयम्; तद्यथा –

''दृश्यतां शक्तिराधी, यत्तस्य यतेरजेयस्येन्द्रियाणां संस्कारेण नीरजसा नीरजसांनिध्यशालिनि सहर्षा- लिनि सरसि सरसिजदलसंनिकाशच्छायस्याधिकतरदर्शनीयस्याकारान्तरस्य सिद्धिरासीत् ।''

''बहुश्रुते विश्रुते विकचराजीसदृशं दृशं चिक्षेप देवो राजवाहनः ।''

''न मां स्निग्धं पश्यति, न स्मितपूर्वं भाषते, न रहस्यानि विवृणोति, न हस्तं स्पृशति, न व्यसने- ष्वनकम्पते, नोत्सवेष्वनुगृह्णाति, ... ।''

उपर्युक्तैरुद्धरणैः निश्चितमिदं भवति यत् दण्डिकृतदशकुमारचरिते शब्दयोजनसौष्ठवं, पदानामनु- प्रासमाधुर्यं, वर्णनवैशद्यं, पदे-पदे पदलालित्यं च मिलति । अत एव समालोचकैः कविकृतीनां समीक्षणं कृत्वा कथ्यते –

''उपमा कालिदासस्य, भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं, त्रयोऽप्येकैकतोऽधिकाः ॥''

संस्कृतपद्यसाहित्ये तु ''नैषधे पदलालित्यम्'' इत्युक्तिरपि प्रचलिता, या महाकवेः श्रीहर्षस्य वैशिष्ट्यं सूचयति । पद्यकाव्ये तु छन्दयोजनायां वर्णस्य व्याकरणस्य च बन्धनं न भवति । अस्यां विधायां कविः स्वरचनां स्वच्छन्दं भूत्वा करोति, परन्तु गद्यलेखने तु पदे-पदे व्याकरणस्य बन्धनं भवति । गद्यमेव कवीनां निकषं भवति । अनेनैव कवेः वैदुष्यं प्रकटितं भवति । अत एव संस्कृत- साहित्याकाशे दशकुमारचरिते आचार्यदण्डिना प्रयुक्तं पदलालित्यमेव काव्यकलायाः मानदण्डः मन्यते । अतो विद्वत्समाजे प्रसिद्धिरियं – **''दण्डिनः पदलालित्यम्''** – सर्वथा समुचिता एव ।

डॉ॰ रतीशचन्द्रझाः

संस्कृतसाहित्ये पर्यावरणम्

संस्कृतसाहित्यं प्रकृतिवर्णनञ्च परस्परं परिपूरकमिति वर्तते । एवञ्च सर्वासु रचनासु पर्यावरण- सम्बन्धितप्रकृतिचित्रणस्य कृते एकमन्यत् स्थानं दत्तमिति अपि सर्वैरपि अङ्गीक्रियते । संस्कृतसाहित्ये प्राणिप्रकृत्योः शाश्वतसम्बन्धः दर्शितः । अस्य मुख्योदाहरणं वर्तते विश्वस्य प्राचीनतमपुस्तके ऋग्वेदे यस्मिन् प्राकृतिकतत्त्वानां मूर्त्तरूपं दत्त्वा विविधविषयाणां वर्णनं वर्तते ।

''वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वम् अखनन्त उत्सम्'' (ऋग्॰ ६-४८-१७)

अयं मन्त्रः प्रदर्शयति यत् वैदिककालेऽपि जनानाम् आस्थायाः रूपं प्रकृतिप्रेम आसीत् । प्रकृतिरेव पर्यावरणमस्ति, यदा प्रकृतिनाशः भवति तदा अनेकाभिः विकृतिभिः सह प्राणिनाम् अपि नाशः जायते।

पर्यावरणस्य स्वरूपम् -

परितः आवृणोति आच्छादयति तत् पर्यावरणम्, पर्यावृत्तिः पर्यावरणम् । अनया व्युत्पत्त्या 'पर्यावरण' शब्दो निष्पद्यते । ये मानवं परितः आच्छादयन्ति, मानवजीवनं च प्रभावयन्ति, ते पर्यावरणशब्देन गृह्यन्ते ।

संस्कृतसाहित्ये पर्यावरणसंरक्षणविषयकं पर्याप्तचिन्तनम् उपलभ्यते । वेदेषु, स्मृतिषु, पुराणग्रन्थेषु च पर्यावरणसंरक्षणाय बहुधा निर्देशः प्राप्यते । यथा - अथर्ववेदे निर्दिश्यते यत् पर्यावरणसंघटकतत्त्वेषु सत्त्वत्रयं प्रमुखं वर्तते -

त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणाम् ।
आपो वाता ओषधयः तान्येकस्मिन् भुवन अर्पितानि ॥
(अथर्व॰ १८-१-१७)

वेदेषु 'महद्-उल्ब' नाम्ना ओजोन-स्तरो निर्दिश्यते । ऋग्वेदे स्पष्टं निर्दिश्यते यत् ओजोन-स्तरः पृथिवीं गर्भस्थबालकम् इव संरक्षति । तद् प्रदूषणं विनाशायैव । यथा -

महत् तदुल्बं स्थविरं तदासीत् येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः ॥
(ऋग्॰ १०-५१-१)

संस्कृतसाहित्ये प्रदूषणनिवारणादेशः -

पद्मपुराणे क्रियायोगखण्डे निर्दिश्यते यद् गङ्गादीनां नदीनां प्रदूषणं महत् पातकम् आवहति । अतः गङ्गादिजलेषु मूत्रं पुरीषं निष्ठीवनं कफादिकम् उच्छिष्टं वा न त्यजेत् । यथा -

मूत्रं वाऽथ पुरीषं वा गङ्गातीरे करोति यः ।
न दृष्टा निष्कृतिस्तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥
(पद्मपु॰ ८-८-१०)

प्राणो वै वनस्पतिः (ऐत॰ ब्रा॰ २-४)

प्राचीनकालेऽपि राजानः स्वप्रसादेषु उद्यानं नियोजयन्ति स्म । शतपथब्राह्मणे शिव ओषधिरूपेण प्रस्तूयते । उद्यानैः अस्मत्कृते बहवः लाभाः सन्ति । वृक्षा कार्बनडाईआक्साइड (CO2) रूपं विषं पिबन्ति, अमृतरूपं प्राणवायुं (Oxygen, O2) वितरन्ति ।

ओषधयो वै पशुपतिः (शतपथ ब्रा॰ १-३-१२)

नमो वृक्षेभ्यः हरिकेशेभ्यः । वनानां पतये नमः ।
ओषधीनां पतये नमः (यजु॰ १६-१७/१९)

एवं संस्कृतसाहित्ये पर्यावरणरक्षणार्थं बहुविधं वर्णनं प्राप्यते । वातावरणस्य शुद्धिकरणाय अस्माकं पूर्वजाः यज्ञानाम् अनुष्ठानमपि कुर्वन्ति स्म । अतः अस्माभिः अपि सा एव सरणिः स्वीकरणीया । वृक्षाणामभावे अपेक्षिता वृष्टिः न भवति । अनेन अनावृष्टिः जायते, या सर्वेषां कृते हानिप्रदा अस्ति। यतो हि अनावृष्ट्या कृषिकार्यं बाध्यते । अस्माभिः तैलचलितानां यानानां प्रयोगः अल्पाल्परूपेण कर्त्तव्यः, यतो हि तैः प्रदूषणं सर्वाधिकं वर्धते । वायोः शुद्ध्यर्थं सर्वैः जनैः हवनादिकम् अपि प्रातः सायंतने च काले करणीयम् । अस्माकं सर्वेषां समीपे यदपि प्रदूषणं तत् प्रयत्नपूर्वकं दूरीकर्त्तव्यम् । अनेन प्रकारेणैव अस्माकं पर्यावरणस्य शुद्धिः भविष्यति, तथा अस्माकं ''स्वच्छ-भारत-अभियानमपि साफल्यं प्राप्स्यति'' तथा वयं च सर्वे स्वस्थाः भविष्यामः ।

सविता

संस्कृत प्रतिष्ठा, द्वितीय वर्ष

चाणक्यनीतिः

१. चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणश्चले जीवितमन्दिरे ।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः ॥

२. एकोऽपि गुणवान् पुत्रो निर्गुणैश्च शतैर्वरः ।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारा सहस्रशः ॥

३. नात्रोदकसमं दानं न तिथिर्द्वादशी समा ।
ना गायत्र्याः परो मन्त्रो न मातुर्दैवतं परम् ॥

४. समाने शोभते प्रीतिः राज्ञे सेवा च शोभते ।
वाणिज्यं व्यवहारेषु स्त्री दिव्या शोभते गृहे ॥

५. तक्षकस्य विषं दन्ते मक्षिकाया मुखे विषम् ।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वाङ्गे दुर्जने विषम् ॥

यस्य यत् नास्ति सः तत् वृणोति

अध्यापकः — यदि भगवान् स्वयं साक्षादागत्य वरं वृणीष्व इति वदेत् तर्हि भवान् किं वृणुयात् ?

एकः विद्यार्थीः — सवर्णदूरदर्शनं वरत्वेन वरिष्यामि ।

अन्यः विद्यार्थीः — अहं शीतकं वरिष्यामि ।

अपरः विद्यार्थीः — अहं सङ्गणकयन्त्रं वरिष्यामि ।

अध्यापकः — रे मूर्खाः ! तथा न कर्तव्यम् । भगवान् साक्षाद्भूय वरं वृणीष्व इति मां कथयति चेत् अहं तु विद्यां वरिष्यामि ।

विद्यार्थीः - — तत्र किम् आश्चर्यम् ? यस्य यन्नास्ति सः तदेव कामयते ।

श्रुति शर्मा

संस्कृत प्रतिष्ठा, तृतीय वर्ष ।

श्लोकाः

१. अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

२. विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्,
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्,
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः ।

३. न चोरहार्यं न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारी ।
व्यये कृते वर्धते एव नित्यं विद्याधनं सर्व धनप्रधानम् ॥

४. युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

५. जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यम्,
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्,
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥

६. परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः ।
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकाराय इदं शरीरम् ॥

७. कस्यैकान्तं सुखम् उपनतं, दुःखम् एकान्ततो वा ।
नीचैर्गच्छति च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

ऋचा

संस्कृत प्रतिष्ठा, तृतीय वर्ष ।

विश्वशान्तिः संस्कृतसाहित्यञ्च

संस्कृतभाषेयं सर्वास्वपि विश्वभाषासु प्राचीनतमा अस्तीत्यत्र नास्ति कश्चिद् विसंवादः । विश्वस्मिन् लब्धप्रचुराः ग्रीक-लैटिनाद्याः भाषाः संस्कृतभाषापेक्षया पश्चादुद्भवा इति भाषातत्त्वविदां सर्वसम्मतं मतम् । इयं भारतस्य प्राणभूता भाषा, अस्मदीयवैदिकलौकिकसाहित्ययोः स्पन्दनं विद्यते । इयं निखिलं भारतमेकस्मिन् सूत्रे बध्नाति । भारतस्य एकतायाः अखण्डतायाः अस्मदीयभावनानाञ्च भाषाऽस्ति । अस्माकं धर्मग्रन्थाः, शास्त्राणि, उपदेशात्मकाः ग्रन्थाश्च संस्कृते एव वर्तन्ते । त्यागतपो- मूलकसंस्कृतेः प्रवर्तनस्य श्रेयः अस्याः भाषाया विद्यते । निखिलं वैदिकसाहित्यं लौकिकसाहित्यञ्च संस्कृतसाहित्ये वर्तते । ऋग्वेदस्य ज्ञानोद्बोधकाः मन्त्राः, यजुर्वेदे वर्णिताः कर्मकाण्डविषयकाः, सामवेदस्य च उपासनामूलकाः मन्त्राः वैदिकवाङ्मयस्य मूलाधाराः सन्ति । साहित्यस्य साधना सम्पूर्णविश्वेन सह एकत्वानुभूतेः साधना अस्ति - इदमेव वैशिष्ट्यं संस्कृतसाहित्यस्यास्ति । यो जनः संस्कृतसाहित्यस्य सागरे निमज्जयितुं प्रयतते, सः तस्मिन् अगाधत्वमेवानुभवति । यदि विश्वस्य समक्षं वयं निजराष्ट्रस्योत्तमनिधिरूपेण किञ्चित् वस्तु स्थापयितुमिच्छुकाः स्याम, तर्हि तत् संस्कृतसाहित्यम् अस्ति ।

दार्शनिकाऽऽध्यात्मिकक्षेत्रे भाषाविज्ञानस्य संस्कृतेर्वा अन्वेषणे सर्वेषु क्षेत्रेषु इदमाधारभूतं मन्यते । संस्कृतसाहित्यस्य विविधेष्वङ्गेषु पाश्चात्यमनीषिभिः शोधकार्यं विधाय अस्य समृद्धिः कृता । वेदानां प्रकाशनं जर्मनीदेशे अक्रियत । वैदिकसाहित्ये वेदाः, ब्राह्मणग्रन्थाः, आरण्यकग्रन्थाः, उपनिषदः, दर्शनानि सर्वेष्वेव ज्ञानधारा प्रवहति । वैदिकसंस्कृतवाङ्मये अथर्ववेदस्य पृथिवीसूक्ते 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' - अहं पृथिवीमातुः पुत्रोऽस्मि इत्युदारभावना समुद्घोषिता । एतस्मिन्नेव वेदे 'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्' इति सन्देशं प्रदाय निखिलं जगत् एकगृहरूपेण समुपस्थापितम् । ऋग्वेदे 'विश्वे अमृतस्य पुत्राः' इति वर्णनेन सर्वे प्राणिनः भगवतः पुत्रस्थानीयाः सन्ति, अतः सर्वेषु बन्धुत्वस्य एक- रूपतायाश्च बोधः कारितः । ऋग्वेदस्य संगठनसूक्ते 'संगच्छध्वं संवदध्वं .....' तथा च 'समानीव आकूतिः .....' इत्यादयः मन्त्राः समुपदिष्टाः । अस्माकं परामर्शाः, समितयः चिन्तनानि च समानानि स्युः, हृदयेषु चित्तेषु च सामञ्जस्यं स्यात् । अथ च यजुर्वेदे 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' - वयं सर्वान् मित्रतायाः दृष्ट्या पश्येम । ईदृश उदात्तविचारा उत्कृष्टसन्देशाश्च मानवजीवनस्योत्थानाय वैदिकवाङ्मये निर्दिष्टाः ।

वैदिकसाहित्ये सर्वेषां धर्माणां मूलमेकं कथितम् । सर्वान् धर्मान् प्रति समभावः प्रतिपादितः, ऋग्वेदे उल्लिखितम् - 'एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति' । संस्कृतवाङ्मयस्य सन्देशः कस्मैचित् जातिविशेषाय देशविशेषाय वा नास्ति, परं सर्वेषां कल्याणाय अभ्युदयाय च सन्देशोऽस्ति - 'सर्वे भवन्तु सुखिनः ।' - इति कथितम् तथा यजुर्वेदे 'यद् भद्रं तन्न आसुव ।' अस्माकं सर्वेषां कल्याणं भवेत् इति प्रतिपादितम् । वैदिकसाहित्ये आध्यात्मिकतायाः प्राधान्यम् । ऋग्वेदस्य प्रारम्भः 'अग्निमीडे पुरोहितम्' - अनेन मन्त्रेण संभूतः, एतस्मिन् अग्नि-नाम्न ईश्वरस्य स्तुतिः कृता । एतस्मिन्नेव वेदे 'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्' - अनेन मन्त्रेण ईशस्य सर्वव्यापकतायाः बोधः कारितः। सर्वत्र व्यापकत्वात् स अस्माकं शुभाशुभानां सर्वविधानां कर्मणां द्रष्टा विद्यते । अत एव अस्माभिः क्रियमाणानां सर्वेषां कर्मणां फलं वयं प्राप्नुमः । कथितमपि - 'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभा- शुभम् ।' एतां भावनामङ्गीकृत्य मनुष्याः सर्वेभ्यः दुरितेभ्यः दूरीभवितुं शक्नुवन्ति ।

संस्कृतसाहित्येऽस्माकं देशस्य संस्कृतिः, सभ्यता, सदाचारः, आत्मा चायं विदधाति । भारतीयानां जीवनं षोडशसंस्कारान् विहाय अपूर्णमेव भवति । ते षोडशसंस्काराः गर्भाधानादारभ्य अन्त्येष्टिपर्यन्ताः सन्ति, ते च संस्कृतभाषायामेव उपनिबद्धाः सन्ति । अतः भारतीयानां जीवनं संस्कृतभाषायामि- त्थमभिव्याप्तं यत् प्रयत्नेऽपि न दूरीभवितुं प्रभवति ।

संस्कृतसाहित्ये त्यागस्य, तपसः, साधनायाश्च माहात्म्यमस्ति । ईशोपनिषदि त्यागभावस्य वर्णनं विद्यते, मानवः धनमर्जयेत् परं तस्योपभोगः त्यागभावनया कुर्यात् - 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा ।' जीवननिर्वाहाय धनमावश्यकम्, तस्याभावे जीवनयापनं नैव भवितुं शक्नोति, परं धर्ममूलं धनमुचितम् । धर्मार्थकाममोक्षेषु चतुर्षु पुरुषार्थेषु धर्मस्य स्थानं प्रथमं तदनन्तरमर्थः धनं वा द्वितीयं स्थानमावहति । 'आचारः परमो धर्मः' इति निर्देशेन मनुष्येभ्यः निजाचरणस्य शुद्धेः परिष्कृतेश्च प्रेरणा प्रदत्ता । सत्यभाषणाय बहुषु स्थलेषु प्रतिपादितम्, मुण्डकोपनिषदि 'सत्यमेव जयते' एतदुद्घोषः कृतः । यावदबधिः सत्यमुच्यते, तावत् तत् सत्यम् । तथा यदा आचरणे समायाति तदा अस्मदीयः धर्मो जायते। मनसि कथञ्चिदपि अन्योन्यं द्वेषभावः वैरभावो वा न करणीयः । एतस्मिन् विषये कठोपनिषदि - 'मा विद्विषावहै' इति कथितम् ।

'अहिंसा परमो धर्मः' अस्य शिक्षा प्रदत्ता । हिंसैव जगति अशान्तेः परमं मूलम् । 'आत्मवत् सर्वभूतेषु पश्येत्' अयमुपदेशः हिंसात्यागविषये विचारणीयः । एतेषां सिद्धान्तानामनुकरणेन मानवेषु परस्परं सौहार्दभावनायाः उत्पत्तिः भवति । परिणामतः जीवने शान्तिसुखयोः आविर्भावः भविष्यति । एवं मनुष्यान् सन्मार्गानुसरणाय प्रेरयितुं संस्कृतसाहित्ये जीवनमूल्यानां प्रतिपादकाः अन्ये अपि बहवः सन्देशाः निर्देशाश्च सन्ति ।

एवमेव लौकिकसंस्कृतवाङ्मये अपि बहुविधाः प्रेरणादायकाः सिद्धान्ताः प्रतिपादिताः। आदि-काव्यरामायणस्य प्रमुखनायकश्रीरामचन्द्रस्य तदीयपूर्ववर्तिनां रघुप्रभृतीनां राज्ञां च चरित्रविषये संस्कृत-साहित्ये वर्णितम् -

त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥

रघुवंशीयाः राजानः धनसंचयं त्यागाय चक्रुः, सत्यरक्षणाय मितभाषिणः आसन्, निजकीर्त्यै एव अन्येषु देशेषु विजयेच्छुकाः अभूवन्, ते न तु भोगविलासाय, अपि तु सन्तानप्राप्त्यै विवाहं विदधुः । महाभारतस्य शान्तिपर्वणि प्राणिमात्रं प्रति मनसा, वाचा, कर्मणा स्नेहः, प्रीतिः, परोपकारश्च उत्तमशीलं कथितम् । आचारवान् शीलवान् जनः श्रेष्ठतमः, अन्यैः अनुकरणीयश्च भवतीति प्रतिपादितम् । कालिदासरचिते अभिज्ञानशाकुन्तलनाटके 'शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने' अनेन कथनेन महतः जनान् प्रति सेवाभावस्य सन्देशः प्रदत्तः । तथा च उपदेशात्मकं ग्रन्थं पञ्चतन्त्रे उद्धृतेन-

विश्वबन्धुत्वमुद्घोषयत्यावनं विश्ववन्द्यैश्चरित्रै जगत्पावयत् ।
विश्वमेकं कुटुम्बं समालोकयत् भूतले भाति मेऽनारतं भारतम् ॥

भारतीयाचार्याणां लक्ष्यं विश्वव्यापिसाम्राज्यस्थापना कदाचित् नाभूत् । तैः सैनिकवादस्य सन्देशः न प्रदत्तः । भारतीयोपमहाद्वीपे उत्तरदिशि हिमालयात् प्रारभ्य दक्षिणदिशि हिन्दमहासागरपर्यन्तम्, तथा च पूर्वस्यां दिशि बङ्गखातात् समुद्रात् वा प्रारभ्य पश्चिमदिशि थारमरुस्थलपर्यन्तं भौगोलिकपरिधिभिः प्राकृतिकरूपेण सुरक्षितम् अखिलभारतीयसाम्राज्यं स्यादित्येव तेषामाकाङ्क्षा आसीत् । विश्वस्यान्यदेशैः सह भारतीयाचार्याणां सम्बन्धसूचकः सन्देशः अध्यात्मिकैकतायाः, विश्वशान्तेः, सहास्तित्वस्य, अहस्तक्षेपबन्धुत्वयोश्च आसीत् । ते भारतमान्तरिकदृष्ट्या इयत् सशक्तं विधातुमिच्छुकाः आसन्, यत् कश्चिदपि अन्यदेशः तदुपरि आक्रान्तुं न शक्नुयात् । (अशोकसाम्राज्य-मस्योदाहरणमासीत्।) ते बाह्यदृष्ट्या भारतं विश्वस्य आध्यात्मिकनैतिकसांस्कृतिकगुरुरूपेण स्थापयितुं चिकीर्षवः आसन् । तस्मिन् काले भारतमनेकजनपदेषु विभक्तमासीत् । 'तान् जनपदानेकीकृत्य विजितक्षेत्रेषु धर्मविजयस्य स्थापना अर्थात् धर्ममाचारं नैतिकताञ्च आधारीकृत्य संगठितराज्यस्य स्थापना तेभ्यः उपादेया आसीत्' इति मनुस्मृतौ वर्णितम् । वर्तमानकाले भौतिकतायै संघर्षः संजातः । भौतिकसुखम्, भोगविलासः, परस्परं प्रतिद्वन्द्विता, ईर्ष्याद्वेषयोः प्रवृत्तयः एतेषां सर्वेषां वृद्धिः संभूता । स्वार्थभावः सर्वोपरि अस्ति । आर्थिकलाभाय शस्त्रसम्बन्धिनः उद्योगाः निखिलजगति शस्त्रप्रतिद्वन्द्विताम् आतङ्कवादं च वर्धयन्ति । शस्त्रसंघर्षः सर्वान् विध्वंसाय प्रेरयति । अर्थकामौ प्रमुखौ स्तः । विपरीतमस्मात् संस्कृतवाङ्मये धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां पुरुषार्थानां समन्वयाय प्रेरणा निर्देशश्च प्रदत्तौ । कर्मदायित्वस्य बोधः कारितः - 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः' यजुर्वेदमन्त्रोऽयं प्रतिपादयति । ईदृश्यां स्थितौ अस्मदीयसाहित्यिकमूल्यानि अधिकप्रासङ्गिकानि भवितुं शक्नुवन्ति । तत्र 'परोपकाराय सतां विभूतयः' इति सन्देशः प्रदत्तः । संस्कृतसाहित्ये आत्मचिन्तनं, सरलस्वच्छजीवनमुच्चविचारश्च एतेभ्यः प्रेरणा उपलभ्यते । अस्मदीयसाहित्ये वैज्ञानिकविकासस्य विरोधो न कृतः, परं तेन विकासेन सह आध्यात्मि- कचिन्तनस्य नैतिकमूल्यानाञ्च समन्वयः करणीयः इति प्रतिपादितम् ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

प्रभूतानि नैतिकमूल्यानि मानवतां रक्षितुं सहयोगं दातुं शक्नुवन्ति ।

संस्कृतवाङ्मये यजुर्वेदे वर्णितेन 'द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिः .....' अनेन प्रख्यातमन्त्रेण पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्युलोकेषु जलौषधिवनस्पतिप्रभृतिषु सर्वत्रैव शान्त्यै कामना कृता। संस्कृतसाहित्ये शान्तेः उद्बोधकः प्रेरणादायकः मानवीयभावनासु जागृतेः शान्तिदायकश्चेतनायाश्च प्रबोधकः अद्वितीयः मन्त्रोऽयं वर्तते । नान्यत्र ईदृशमुदाहरणं लभ्यते । एवं संस्कृतसाहित्ये वर्णितानां सिद्धान्तानां सन्देशानाञ्चानुकरणेन इदं कथयितुं शक्यते यद् विश्वशान्त्यै संस्कृतसाहित्यस्य बहुयोगदानं भवितुं शक्नोति ।

रश्मि यादव, संस्कृत प्रतिष्ठा, प्रथम वर्ष ।

अद्भुतस्वप्नः

राजीवस्य अद्भुतः स्वप्नः
सिंहो वदति म्याऊँ – म्याऊँ
हस्ती धावति यथा चित्तकः
सर्पः वदति भौं – भौं भाऊँ ।

भल्लूकः दुर्बलः तथा यत्
यथा चमरपुच्छा सञ्जातः ।
मूषकभीता धावति मार्जारी
शशकः धावति शृङ्गयुतः ॥

सर्वेभ्यः शिक्षिकाभ्यः शिक्षकेभ्यश्च समर्पितम्

किम् अस्ति तत् पदम्
यः लभते इह सम्मानम्
किम् अस्ति तत् पदम्
यः करोति देशानां निर्माणम्

किम् अस्ति तत् पदम्
यं कुर्वन्ति सर्वे प्रणामम्
किम् अस्ति तत् पदम्
यस्य छायायां प्राप्तं ज्ञानम्

किम् अस्ति तत् पदम्
यः रचयति चरित्रं जनानाम्
'गुरुः' अस्ति अस्य पदस्य नाम
सर्वेषां गुरूणां मम शत शत प्रणामः ॥

श्रुति शर्मा
संस्कृत प्रतिष्ठा, तृतीय वर्ष

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्

कस्मिंश्चित् राज्ये कश्चन महाराजः आसीत् । शकुनादिषु तस्य महान् विश्वासः । सः सन्तोषेण राज्यं परिपालयति स्म । एकदा सः महाराजः रात्रौ भूरिभोजनं कृत्वा ताम्बूलसेवनं च कृत्वा निद्रामग्नः आसीत् । निद्रायां सः कञ्चित् दृष्टवान् । तस्मिन् स्वप्ने सः दृष्टवान् यत् स्वस्य मुखे स्थितेषु दन्तेषु एकं विहाय अन्ये सर्वे अपि दन्ताः पतिताः सन्ति । परेद्यवि प्रातः काले उत्थाय महाराजः कञ्चित् पण्डितम् आहूतवान् । तस्मै स्वप्नवृत्तान्तं निवेदितवान् । ततः – "एतस्य स्वप्नस्य आशयः कः ?" इति तं पृष्टवान् । पण्डितः किञ्चित्कालं विचिन्त्य उक्तवान् – "महाराज ! भवतः स्वप्नस्य आशयः अयमस्ति यत् भवतः सर्वाणि अपि मित्राणि भवतः मरणात् पूर्वमेव मरणं प्राप्स्यन्ति" इति । एतत् श्रुत्वा महाराजः कुपितः अभवत् । सः तं पण्डितं कारागृहं प्रेषितवान् । तदनन्तरं महाराजः स्वस्य अमात्यम् आहूतवान् । तम् अपि स्वप्नवृत्तान्तम् उक्तवान् । स्वप्नस्य आशयः कः ? इति पृष्टवाञ्च ।

अमात्यः अतीव चतुरः । सः विचिन्त्य उक्तवान् – "राजन् ! शुभसूचकः स्वप्नः अस्ति एषः । एतस्य आशयः अस्ति यत् भवान् भवतः मित्राणाम् अपेक्षया दीर्घकालं जीविष्यति, भवान् अतीव दीर्घायुष्मान् अस्ति" इति ।

अमात्यस्य वचनं श्रुतवतः महाराजस्य महान् संतोषः जातः । तस्मै प्रभूतं धनम् उपायनं च दत्त्वा सः तं सत्कृतवान् । प्रवृत्तं सर्वं ज्ञात्वा पण्डितः आश्चर्यचकितः जातः । सः महाराजं पृष्टवान् – "राजन् ! मम अमात्यस्य च कथनस्य आशयः समान एव । तथापि किमर्थं मम कृते कारागृहवासः दत्तः, अमात्यस्य च कृते उपायनम् दत्तम् ?" इति ।

तदा महाराजः उक्तवान् – "सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात् ।"

नीरज कुमारः
संस्कृत प्रतिष्ठा, तृतीय वर्ष

स्तुतिः

१. नमस्ते सतेते जगत्कारणाय,
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय ।
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय,
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ॥

२. त्वमेकं शरण्यं त्वमेकं वरेण्यं,
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम् ।
त्वमेकं जगत्कर्तृपातृप्रहर्तृ,
त्वमेकं परं निश्चलं निर्विकल्पम् ॥

३. भयानां भयम् भीषणं भीषणाम्,
गतिः प्राणिनाम् पावनं पावनानाम् ।
महोच्चैः प्रदानाम् नियन्तृ त्वमेकं,
परेषां परं रक्षणं रक्षणानाम् ॥

४. वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो,
वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः ।
सदेकं निधानं निरालम्बमीषम्,
भवाम्बोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ॥

५. वायुर्यमोग्निर्वरुणः शशाङ्कः,
प्रजापतेस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वा,
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥

संस्कृतगीतिका

हे भारतं – भारतं भवतु भारतम्

१. शक्तिसम्भृतं युक्तिसम्भृतं
शक्तियुक्तिसम्भृतं भवतु भारतम् ।

२. शस्त्रधारकं शास्त्रधारकं
शस्त्रशास्त्रधारकं भवतु भारतम् ।

३. रीतिसंस्कृतं नीतिसंस्कृतं
रीतिनीतिसंस्कृतं भवतु भारतम् ।

४. कर्मनैष्ठिकं धर्मनैष्ठिकं
कर्मधर्मनैष्ठिकं भवतु भारतम् ।

संस्कृतभाषायाः महत्त्वम्

संस्कृता परिष्कृता परिशुद्धा व्याकरणसम्बन्धिदोषरहिता भाषा संस्कृतभाषेति निगद्यते । सर्वविध- दोषशून्यत्वादियं भाषा देवभाषा गीर्वाणगीः इत्यादिभिः शब्दैः संबोध्यते । अतोऽन्या भाषा प्राकृतभाषा पदवीं प्राप्ता ।

संस्कृतभाषा विश्वस्य सर्वासु भाषासु प्राचीनतमा सर्वोत्तमसाहित्ययुक्ता चास्ति । संस्कृतभाषाया उपयोगिता एतस्मात् कारणाद् वर्तते यद् एषैव सा भाषाऽस्ति यतः सर्वासां भारतीयानाम् आर्यभाषाणाम् जननी । सर्वभाषाणां मूलरूपज्ञानाय एतस्या आवश्यकता भवति । प्राचीनसमये एषैव भाषा सर्वदा सर्वसाधारणा आसीत् । सर्वे जनाः संस्कृतभाषाम् एव वदन्ति स्म । अतः ईस्वीयसंवत्सरात्पूर्वं प्रायः समग्रमपि साहित्यं संस्कृतभाषायामेव उपलभ्यते । संस्कृतभाषायाः सर्वे जनाः प्रयोगं कुर्वन्ति स्म, इति तु निरुक्तमहाभाष्यादिग्रन्थेभ्यः सर्वथा सिद्धमेव आधुनिकं भाषाविज्ञानमपि एतमेव सनिश्चयं प्रमाणयति।

संस्कृतभाषायामेव विश्वसाहित्यस्य सर्वप्राचीनग्रन्थाः चत्वारो वेदाः सन्ति, येषां महत्त्वमद्यापि सर्वोपरि वर्तते । वेदेषु मनुष्याणां कर्तव्याकर्तव्यस्य सम्यक्तया निर्धारणं वर्तते । वेदानां व्याख्यानभूता ब्राह्मणग्रन्थाः सन्ति । तदनन्तरम् अध्यात्मविषयप्रतिपादिका उपनिषदः सन्ति, यासां महिमा पाश्चात्यैर्पि निस्संकोचं गीयते । ततश्च भारतगौरवभूताः षड्दर्शनग्रन्थाः सन्ति, ये विश्वसाहित्येऽद्यापि सर्वमान्याः सन्ति । ततश्च श्रौतादिसूत्राणां, धर्मसूत्राणां, वेदस्य व्याख्यानभूतानां षड्वेदाङ्गानां च गणना भवति ।

महर्षिवाल्मीकिकृतस्य रामायणस्य महर्षिव्यासकृतमहाभारतस्य च रचना विश्वसाहित्ये अपूर्वा घटना आसीत् । सर्वप्रथमं विशदस्य कवित्वस्य, प्रकृतिसौन्दर्यस्य, नीतिशास्त्रस्य, अध्यात्म- विद्यायाश्च तत्र दर्शनं भवति । तदनन्तरं कौटिल्यसदृशाः अर्थशास्त्रकाराः भासकालिदासाश्वघोष- भवभूतिदण्डिसुबन्धुबाणजयदेवप्रभृतयो महाकवयो नाटककाराश्च पुरतः समायान्ति, येषां जन्मलाभेन न केवलं भारतभूमिरेव अपितु समस्तं विश्वमेतद् धन्यमस्ति । एतेषां कविवराणां गुणगणस्य वर्णने महाविद्वांसोऽपि असमर्थाः सन्ति, का गणना साधारणानां जनानाम् । भगवद्गीता, पुराणानि, स्मृतिग्रन्थाः अन्यद्विषयकं च सर्वं साहित्यं संस्कृतस्य महात्म्यमेवोद्घोषयति ।

संस्कृतभाषैव भारतस्य प्राणभूता भाषाऽस्ति । एषैव समस्तं भारतवर्षमेकसूत्रे बध्नाति । भारतीय- गौरवस्य रक्षणाय एतस्याः प्रचारः प्रसारश्च सर्वैरेव कर्तव्यः ।

जयतु संस्कृतं, जयतु भारतं, विजयतां भारतमाता ।

— **तरुणः**, संस्कृत प्रतिष्ठा, प्रथम वर्ष ।

लोकतन्त्रः

लोकतन्त्रशब्दस्य शाब्दिकोऽर्थः जनानां लोकानां प्रजानां वा तन्त्रं शासनं लोकतन्त्रः प्रजातन्त्रः जनतन्त्र इत्यभिधीयते । ईदृशी शासनव्यवस्था यत्र जनता स्वशासकः स्वयमेव चिनोति । जनतन्त्रस्य बह्व्यः परिभाषा उपलभ्यन्ते । तत्र अमेरिकादेशस्य राष्ट्रपतेः 'अब्राहमलिंकन'महोदयकृता परिभाषा महत्त्वपूर्णा जनतन्त्रं नाम जनतायाः जनतोपरि जनतार्थे शासनं नाम लोकतन्त्रः - 'It is a government of the people, by the people and for the people.'

भिन्नभिन्नदेशकालपरिस्थितौ भिन्नभिन्नधारणायाः प्रयोगे अस्यावधारणा किञ्चित् जटिला जाता । प्राचीनकालादेव लोकतन्त्रस्य सन्दर्भे बहवः मताः सन्ति । लोकतन्त्रस्य त्रीणि भेदानि सन्ति -

(1) प्रतिनिधि-लोकतन्त्रः

(2) उदार-लोकतन्त्रः

(3) प्रत्यक्ष-लोकतन्त्रश्च ।

तत्र प्रथमः प्रतिनिधिलोकतन्त्रः -

प्रतिनिधिलोकतन्त्रे जनता सर्वकाराधिकारीणां साक्षात् चयनं करोति । प्रतिनिधीनां कस्मादपि संसदीयक्षेत्राद् जनपदात् चयनं भवति । केषुचित् देशेषु समानुपातिकव्यवस्थायां सर्वेषां मतदातॄणां प्रतिनिधयः प्रतिनिधित्वं कुर्वन्ति अथवा केषुचित् स्थानेषु मिश्रिताः व्यवस्थाः भवन्ति । यद्यपि लोकतन्त्रे प्रतिनिधयः जनतया निर्वाचिताः भवन्ति, पुनरपि जनतायाः हितार्थे कार्यं करणाय नीतयः प्रतिनिधयः स्वयमेव आविष्कुर्वन्ति । यद्यपि दलगतनीतयः प्रभावचिन्ता पुनर्निर्वाचनः एतादृशानि कारकाणि प्रतिनिधिं प्रभवन्ति । किन्तु सामान्यतया काचिदेव बाध्यकारी अनुदेशाः भवन्ति । अस्याः प्रणाल्याः सर्वश्रेष्ठं वैशिष्ट्यं एतदस्ति यत् जनादेशस्य भयः नीतिगतविचलनसत् निवारयति । यतो हि नियमितान्तरालेषु सत्तायाः वैधतार्थे चयनमनिवार्यम् ।

तत्र द्वितीयः उदारलोकतन्त्रः -

अयमेकः प्रतिनिधिलोकतन्त्रस्य एव प्रकारोऽस्ति । यस्मिन् प्रतिनिधीनां स्वच्छतया निष्पक्षतया चयनं भवति । उदारलोकतन्त्रस्य चरित्रगतलक्षणे अल्पसङ्ख्यकानां सुरक्षा, कानूनव्यवस्था, शक्ति- वितरणः सामान्यतया भवति । अस्य अन्ये मुख्यगुणाः अभिव्यक्तेः, भाषायाः, धर्मस्य, शिक्षायाः सम्पत्तेश्च स्वतन्त्रता भवति ।

तत्र तृतीयः प्रत्यक्षलोकतन्त्रः -

प्रत्यक्षलोकतन्त्रे सर्वे नागरिकाः महत्त्वपूर्णेषु नीतिगतनिर्णयेषु मतदानं कुर्वन्ति । अयं प्रत्यक्षो कथ्यते यतो हि सैद्धान्तिकरूपेण अस्मिन् कोऽपि प्रतिनिधिः मध्यस्थो वा न भवति । लघुसमुदायेषु नगरेषु राष्ट्रेषु च सर्वे प्रत्यक्षलोकतन्त्राः भवन्ति । यथा स्विट्जरलैण्डः ।

भारते लोकतन्त्रस्य प्राचीनतमः प्रयोगः -

प्राचीनकाले भारते सुदृढव्यवस्था आसीत् । अस्य साक्ष्याणि अस्मान् प्राचीनसाहित्यात्, मुद्रायाः, अभिलेखाच्च प्राप्नुवन्ति । विदेशयात्रीणां विदुषां वर्णनेषु अस्य प्रमाणानि सन्ति । वैदिकवाङ्मयम् अनुशीलयते चेत् तर्हि दृग्गोचरतामायाति यद् राजतन्त्रशासनेन सममेव लोकतन्त्रशासनमपि वैदिककाले प्रचलति स्म । ऋग्वेदे राज्ञो निर्वाचनस्य वर्णनं प्राप्यते । अथर्ववेदेऽपि राज्ञो निर्वाचनस्य जनतायाः समर्थनस्यावश्यकतायाश्च वर्णनमुपलभ्यते ।

विशो न राजानं वृणानाः (ऋग्वेद - १०-१२४-८)

त्वां विशो वृणतां राज्याय (अथर्व॰ - ३-४-२)

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु (अथर्व॰ - ६-८७-१)

राज्ञः परामर्शदातृरूपेण सभासमितिनाम्न्योः परिषदोर्वर्णनमपि प्राप्यते । -

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाते ..... (अथर्व॰ - ७-१०२-१)

प्राचीनगणतान्त्रिकीव्यवस्थायां वर्त्तमानसदृशी शासकस्य शासनस्य च अन्यपदाधिकारीणां निर्वाचनप्रणाली आसीत् । योग्यतानां गुणानां च आधारेण तेषां चयनप्रक्रिया वर्त्तमानप्रकारेण किञ्चिद् अवश्यमेव आसीत् । सर्वान् नागरिकान् मताधिकारः नासीत् । ऋग्वेदः अथर्ववेदः कौटिल्यार्थशास्त्रञ्च चयनपद्धतेः पुष्टिं कुर्वन्ति । परं तेषां समीपे मताधिकारः आसीत् न वा अस्य साक्ष्याणि न विद्यन्ते ।

प्राचीनसमये परिषदां निर्माणमभूत् यत् वर्त्तमानसंसदीयप्रणाल्याः सदृशमेव आसीत् । अस्य सदस्यानां संख्या विशालासीत् । तस्मिन् काले सर्वाधिकः प्रसिद्धः गणराज्यः लिच्छविः आसीत् । तस्य केन्द्रीयपरिषदि ७७०७ सदस्याः आसन् । यौधेये गणराज्ये केन्द्रीयपरिषदि ५००० सदस्याः आसन् । वर्त्तमानसंसदीयसत्तानुसारं तत्रापि परिषदाम् अधिवेशनः नियमितरूपेण भवति स्म । तत्र मतदानस्य त्रयः प्रकारः आसन् -

(1) गूढकः (2) विवृतकः (3) संकर्णजल्पकश्च ।

1) गूढकः (गुप्तरूपेण) अर्थात् स्वमतं कस्मिन्नपि मतपत्रे लिखित्वा गुप्तपात्रे दानं यस्मिन् मतदातुः नाम न भवति ।

2) विवृतकः (प्रकटरूपेण) अर्थात् अस्यां प्रक्रियायां व्यक्तिः सम्बन्धितविषयं प्रति स्वकीयान् विचारान् सर्वेषां पुरः प्रकटीकरोति ।

3) संकर्णजल्पकः (शलाकाग्राहकस्य कर्णे गुप्तरूपेण कथनं) अत्र शलाकाग्राहकः निरपेक्षतया तटस्थतया मतगणनां करोति ।

प्राचीनकाले प्रमुखगणतन्त्राः -

(1) लिच्छविः (2) वज्जिः (3) अम्बष्ठः (4) आग्नेयः
(5) अरिष्टः (6) औटम्बरः (7) कठः
(8) कुणिन्दः (9) क्षुद्रकः (10) पाटनप्रस्थः ।

वर्त्तमानकाले लोकतन्त्रविषये प्रमुखावधारणाः -

(1) लोकतन्त्रस्य पुरातन-उदारवादीसिद्धान्तः

(2) लोकतन्त्रस्य अभिजनवादीसिद्धान्तः

(3) लोकतन्त्रस्य बहुलवादीसिद्धान्तः

(4) प्रतिभागीलोकतन्त्रस्य सिद्धान्तः

(5) लोकतन्त्रस्य मार्क्सवादीसिद्धान्तः

(1) तत्र प्रथमः लोकतन्त्रस्य पुरातन-उदारवादीसिद्धान्तः -

अस्यां परम्परायां स्वतन्त्रतायाः समानतायाः अधिकारः धर्मनिरपेक्षता-न्यायसदृशी-अवधारणानां प्रमुखं स्थानं वर्तते । अन्यश्च उदारवादीचिन्तकाः प्रारम्भकालात् एव हि इमाः अवधारणा मूर्त्तरूपस्य प्रदात्री-सर्वोत्तमप्रणाल्याः रूपेण स्वीकुर्वन्ति ।

(2) लोकतन्त्रस्य अभिजनवादीसिद्धान्तः -

अस्यां परम्परायां सत्तायाः शीर्षनेतृत्वे अभिजनवर्गस्य शासनं भवति । अभिजनवर्गः अनवरतः एकसदृशः न भवति । अस्मिन् वर्गे नूतनाः प्रविशन्ति पुरातनाश्च बहिर्गच्छन्ति ।

(3) लोकतन्त्रस्य बहुलवादीसिद्धान्तः -

अस्यां परम्परायां सत्तायां एकाधिकारः निषिद्धः अस्ति । अस्यां सत्तायाः प्रसारितं विकेन्द्रीकृतं रूपं स्वीक्रियते । "जनभागीदारी" अत्र महत्त्वपूर्णं वर्तते ।

(4) प्रतिभागीलोकतन्त्रस्य सिद्धान्तः -

नीतिनिर्धारणे सामान्यजनस्य प्रत्यक्षभागग्रहणं सहभागिता च अस्य सिद्धान्तस्य महत्त्वपूर्णं बिन्दुः । सहभागिता सिद्धान्तानुसारं लोकतन्त्रः प्रथमतया प्रत्येकव्यक्तेः समानसहभागितायाः समर्थकः ।

(5) लोकतन्त्रस्य मार्क्सवादीसिद्धान्तः -

अयं जनतायाः लोकतन्त्र उच्यते । अस्यां परम्परायां राजसत्तायाः अधिकाराः विशेषाधिकाराश्च पूर्णतया समग्ररूपेण श्रमिकवर्गस्य पार्श्वे स्युः । अस्य पक्षकाराणाम् अयमभीप्सितः ।

लोकतन्त्रस्य लाभाः -

अत्र राज्यापेक्षया व्यक्तेर्महत्त्वं वैयक्तिकविकासस्य च पूर्णोऽधिकारः लभ्यते । राज्यमत्र साधनं जनोऽत्र साध्यश्च अतो व्यक्तेः स्वातन्त्र्यम् । मतदानेऽपि स्वातन्त्र्यलाभात् प्रतिनिधिनिर्वाचने अप्रतिहतं स्वतन्त्रता भवति । भाषणे लेखने विचाराभिव्यक्तौ चात्र पूर्णा स्वतन्त्रता भवति । ईदृशं स्वातन्त्र्यं

लोकहितघातकं न भवितुमर्हति । विविधाः क्रान्तयो जनशोषणेन अत्याचारादिभिर्वा प्रादुर्भूताः । अत्र स्वाभिगत-स्वप्रकाशन-स्वातन्त्र्यात् न रक्तमयी क्रान्तिः सम्भाव्यते ।

अत्र समानाधिकारत्वात् कस्यचिद् वर्गस्य शोषणं न सम्भवति । प्रतिनिधीनां निर्वाचनात् कुशलशासनं भवति । निर्वाचने जनमतस्य प्राधान्यात् निर्वाचितप्रतिनिधीनां नैतिकं महत्त्वम् आशास्यते। लोकायत्तवादस्य शासनस्य लोकेषु देशप्रेमभावना जागर्ति । लोकाः एव शासकाः इत्येवं रूपेण लोकेषु स्वाभिमानोदयः । एवमस्य तन्त्रस्य वैज्ञानिकमपि महत्त्वम् । साम्प्रतिक्यां स्थितौ जनतन्त्रमेव सर्वोत्कृष्टत्वेन गण्यते ।

लोकतन्त्रस्य वैशिष्ट्यम् -

लोकतन्त्रशासनस्य सूत्रं लोकायत्तं भवति । लोकतन्त्रे जननिर्वाचिताः शासनसूत्रं गृह्णन्ति । यद्येभिर्लोकहितं न सम्पद्यते जनमनोऽनुकूलं च न कार्यं निष्पाद्यते तर्हि ते आगामिनि निर्वाचने पदच्युताः क्रियन्ते भवन्ति वा । एवं जनविश्वासं प्राप्य एव जनप्रतिनिधयस्तत्र शासनं विदधति । जनप्रतिनिधिशासनत्वाद् एतद् उत्तरदायित्वपूर्णं शासनं भवति । प्रतिमानवं भेदाभावात् समानत्वमत्र भवति । अत्र नागरिकेभ्यः सामाजिकी राजनैतिकी आर्थिकी च स्वतन्त्रता भवति । अस्य तन्त्रस्य वयस्कमतदानाधिकारः प्रमुखं वैशिष्ट्यम् । मतदानाधिकारलाभेन लोकेषु उत्तरदायित्वस्य भावना जागर्ति। अत्र मताधिकारः सर्वश्रेष्ठं वैशिष्ट्यम् ।

लोकतन्त्रस्य सारः यदि कथनीयं चेद् मम मतेन तु हिन्दीभाषायाः अयं पङ्क्तिः सर्वोत्कृष्टा - ''मतभेद होना चाहिए न कि मनभेद'' अर्थात् परस्परं लोकतन्त्रे मतभेदं भवितुमर्हति परं मनःभेदः न स्यात् । परस्परं सर्वेषां सम्मानं समानाधिकाराः च स्युः ।

अतुलकुमार शुक्लः
संस्कृत प्रतिष्ठा, द्वितीय वर्ष

भ्रष्टाचारः-समस्या समाधानञ्च

कः भ्रष्टाचारः ? अनुचितसाधनेन धनोपार्जनम् भ्रष्टाचारः । भ्रष्टाचारः अनेकरूपः, यथा - उत्कोच-(घूस)-ग्रहणम्, खाद्यवस्तुषु अखाद्यस्य मिश्रणम्, अनुचितसाधनेन धनप्राप्तिः, स्वेष्टकार्यस्य सम्पादनार्थम् उत्कोचप्रदानम् । साम्प्रतं भारतवर्षे भ्रष्टाचारः विषवृक्षवत् संवर्धते । उत्कोचदानम् उत्कोचग्रहणञ्च आमूलं दृश्यते । उत्कोचग्रहणसमस्या वर्तते । केवलं सामान्याः अधिकारिण एव अत्र न प्रवर्तन्ते, अपितु उच्चाधिकारिणः अपि आमूलम् उत्कोचग्रहणे प्रवृत्ताः । 'यथा राजा तथा प्रजा' यदा उच्चाधिकारिणः उत्कोचं गृह्णन्ति, तदा निम्नपदस्थाः अधिकारिणः अपि निर्भयम् उत्कोचग्रहणे प्रवर्तन्ते । भारते भ्रष्टाचारस्य स्थितिः भयावहा वर्तते । जनता किंकर्तव्यविमूढा वर्तते । कं नु शरणं गच्छामि, न कश्चित् मां शृणोति ।

भ्रष्टाचारः शतविधः । यो यत्र वर्तते, स तत्रैव भ्रष्टाचारे प्रवृत्तः । मन्त्रिणः, सांसदाः, विधायकाः चापि एतस्मिन् कार्ये लज्जां न अनुभवन्ति । सत्यम् एतद् यद् भ्रष्टाचारः असाध्यो रोगः । परन्तु निपुणाः भिषजः असाध्यमपि रोगं साध्यं कुर्वन्ति । यत्ने कृते न हि किञ्चिद् असाध्यं भवति । सर्वकारस्य शिथिलतैव अत्र प्रमुखं कारणम् । यदि सर्वकारः दृढनिश्चयेन प्रवर्तेत, तदा न किञ्चिद् असाध्यम् ।

भ्रष्टाचारस्य निषेधोपायाः ? १. आचारशिक्षायाः नैतिकशिक्षायाश्च शतविधः प्रचारः प्रसारश्च स्यात् । २. कठोरदण्डव्यवस्था भवेत् । महाभारते उच्यते - 'दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति ।' ३. धनलोलुपतायाः परित्यागस्य शिक्षणम् । ४. विलासिजीवनस्य परित्यागः । ५. कठोरश्रमस्य शिक्षा । ६. राजपुरुषाणां चलाचलसम्पत्तिघोषणा अनिवार्या स्यात् । ७. मनोः शिक्षायाः प्रसारणम् । यथा -

'अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥

जयकृष्णः
संस्कृत प्रतिष्ठा, प्रथम वर्ष

स्वामिविवेकानन्दः

न केवलं भारते अपितु विदेशेषु अपि भारतगौरवम् उन्नतिकारकस्य स्वामिनः विवेकानन्दस्य नाम को न जानाति। अस्य पितुः नाम विश्वनाथदत्तः आसीत् । सः पाश्चात्यसभ्यतायां आस्थावान् अभवत्। तस्य खलु गृहे जनवरीमासस्य द्वादशतारिकायां १८६३ ईस्वीये वर्षे एकः बालकः उत्पन्नोऽभवत् । अस्य नाम नरेन्द्रः आसीत् । अनेनैव बालकेन पञ्चविंशति वर्षे कषायवस्त्राणि धारितानि तथा च भारतीयतत्त्वज्ञानस्य शिक्षा पाश्चात्यजगति प्रदत्ता । अनेन प्रकारेण अल्पीयसी वयसि खलु महान् विश्वगुरुः अभवत् ।

बाल्यकालादेव बालकेऽस्मिन् आध्यात्मिकी पिपासा महती आसीत् । १८८४ ईस्वीये वर्षे अस्य पितुः विश्वनाथस्य स्वर्गवासोऽभवत् । अतः परिवारस्य सम्पूर्णानि दायित्वानि अस्य स्कन्धोपरि आगतानि । अस्य बाल्यकालः विपन्नायाम् आर्थिकदशायां व्यतीतोऽभवत् । अभूतपूर्वप्रतिभासम्पन्नेन नरेन्द्रेण बाल्यावस्थायामेव सर्वेषां दर्शनानाम् अध्ययनं कृतम् । जिज्ञासुः बालकः नरेन्द्रः स्वजिज्ञासायाः शान्त्यर्थं इतस्ततः अभ्रमत् । अनेकेषां पण्डितानां समीपम् अगच्छत् । किन्तु सर्वत्र समाधानम् अप्राप्य खलु व्याकुलोऽभवत् । तस्मिन्नेव समये अस्य साक्षात्कारः स्वामिना रामकृष्णपरमहंसेन सह सञ्जातः । कथ्यते यत् अनेनैव बालकं नरेन्द्रं आत्मदर्शनम् अकारयत् । अतः सः खलु अस्य गुरुः अभवत् ।

संन्यासग्रहणे कृते अनेन पदाति खलु सम्पूर्णस्य भारतवर्षस्य यात्रा कृता आसीत् । विश्वधर्म- सम्मेलने आरम्भे तु अस्यां परिषदि प्रवेशस्य अनुमतिः अपि न प्राप्तः विवेकानन्दः यतो हि सर्वेषां वैदेशिकानां विचारः आसीत् यत् पराधीनस्य भारतस्य जनः कीदृशः धर्मोपदेशः दास्यति ? यतो हि ते भारतस्य नाम्ना वै घृणां कुर्वन्ति स्म इति, किन्तु एकस्य अमेरिकनप्रोफेसरमहाभागस्य प्रयासेन अनुमतिः प्राप्ता, किञ्चित् सम्भाषणाय । १८९३ ईस्वीयवर्षस्य सितम्बरमासस्य एकादशतारिकायां स्वामिनः विवेकानन्दस्य सम्भाषणेन सर्वे वैदेशिकाः चमत्कृताः सञ्जाताः । तस्मिन्नेव दिने सर्वैः स्वीकृतम् एतत् यत् भारतवर्षः सदैव विश्वस्य गुरुः आसीत् भविष्यति च । अनेन जनेन वस्तुतः विदेशेषु हिन्दूधर्मस्य पताका प्रसारिता । भारतस्य अद्भुतमेधायाः सम्यक् चित्रं तत्र प्रस्तुतम् । तेन कथितम् यत् अध्यात्मविद्यां भारतीयदर्शनं विना सम्पूर्णः खलु विश्वः अनाथ एव अस्ति ।

सः विदेशे १८९६ ईस्वीयवर्षं यावत् न्यवसत् । तत्र अनेन रामकृष्णमिशनस्य अनेकाः शाखाः प्रस्थापिताः । अनेकैश्च अमेरिकनविद्वद्भिः अस्य शिष्यत्वं गृहीतम् । स्वामिनः विवेकानन्दस्य कथनम् एतत् आसीत् यत् नाहं तत्त्ववेत्ता नैव च दार्शनिकः अपितु अहं खलु निर्धनः, निर्धनानाञ्च अनन्य-भक्तोऽस्मि । वस्तुतः सः खलु ईदृशः महात्मा यस्य हृदि निर्धनानां कृते स्नेहः आसीत् । १९०२ ईस्वीये वर्षे जुलाईमासस्य चतुर्तारिकायां अनेन महात्मना पार्थिवशरीरस्य परित्यागः कृतः । वस्तुतः अद्भुतव्यक्तित्वसम्पन्नस्य तस्य हृदये भारतप्रेम घनिष्ठरूपेण आसीत् । सः खलु अनन्यदेशभक्तोऽपि आसीत् । स्वतन्त्रतायाः संग्रामेऽपि तेन भारतीययुवकानां देशप्रेम्णः पाठं पाठितः । ईदृशः महान् नायकः अस्माकं सर्वेषां भारतीयानाम् आदर्शोऽस्ति । अस्माभिः सर्वैः तं प्रति श्रद्धा करणीया ।

गोविन्द उपाध्याय
संस्कृत प्रतिष्ठा, तृतीय वर्ष

उचिता शिक्षा

एकदा महात्मा बुद्धः भिक्षार्थं कस्यचित् धनिकस्य गृहं गतवान् । गृहस्य पुरतः स्थित्वा 'भिक्षां देहि' इति हस्तौ प्रसारितवान् । सः धनिकः बुद्धस्य विख्यातिं पूर्वमेव श्रुतवान् आसीत् । तादृशः महात्मा स्वगृहम् आगतवान् इति सः अतीव प्रसन्नः अभवत् । सः उक्तवान् – "भगवन् ! भवतः भिक्षादाने अहं समर्थः अस्मि । मम निकटे धनकनकादीनि, वस्त्राणि, धान्यानि च सन्ति । भवान् यत् इच्छति तत् ददामि । वदतु, किम् इच्छति भवान् ?"

"भिक्षारूपेण भवान् यत् ददाति तदेव अहं कृतज्ञतापूर्वकं स्वीकरोमि । परन्तु भवदीयमेव यत् अस्ति तत् केवलम् अहं स्वीकरोमि" इति मन्दहासपूर्वकम् उक्तवान् बुद्धः ।

"एतस्मिन् गृहे यत् अस्ति तत् सर्वम् अपि मदीयमेव । तत्र कः संशयः" इति निर्णयं कृत्वा सुवर्णनाणकानि आनीय, तैः पूर्णम् अञ्जलिम् अग्रे प्रसार्य 'भगवन् ! स्वीकरोतु' इति उक्तवान् ।

परन्तु बुद्धः तानि न स्वीकृतवान् । उक्तवान् च – "हा हन्त ! एतानि नाणकानि भवदीयानि न। अतः अहं न स्वीकरोमि ।"

तदा धनिकः कुतूहलेन पृष्टवान् – "कथं एतानि मदीयानि न ?"

बुद्धः उक्तवान् – "लक्ष्मीः चञ्चला । सा कदाचित् भवतः गृहे निवसति, कदाचित् अन्यत्र गच्छति । अतः चञ्चला लक्ष्मीः भवदीया एव भवितुं न अर्हति" इति ।

तदा धनिकः पुनरपि गृहस्य अन्तः गतवान् । एकं पीताम्बरम् आनीय उक्तवान् – "भगवन् ! एतत् तु मदीयमेव । कृपया एतत् स्वीकरोतु" इति ।

बुद्धः तदपि निराकृतवान् । एवमेव धनिकः स्वगृहे विद्यमानम् एकैकमपि वस्तु आनीय दर्शितवान्। परन्तु बुद्धः "तत्र एकमपि भवदीयं न" इति वदन् निराकृतवान् ।

अन्ते धनिकः कुपितः अभवत् । कोपम् असहमानः सः "किम् एवम् अर्थहीनं रटति भवान् ?" इति वदन् बुद्धस्य कपोले चपेटिकां दत्तवान् ।

बुद्धस्य कपोलः रक्तवर्णः जातः । तथापि मन्दस्मितः सन् सः उक्तवान् – "मित्र ! एतत् तु अवश्यं भवदीयम् एव । अहम् एतत् ससन्तोषं स्वीकृतवान् अस्मि" इति ।

बुद्धस्य एतादृशं वचनं श्रुत्वा सः धनिकः अत्यन्तः प्रभावितः अभवत् । सः बुद्धस्य चरणयोः पतितवान् । उक्तवान् च – "भगवन् ! अहम् अद्य पर्यन्तं मोहान्धकारे मग्नः आसम् । भवतः ईदृशेन व्यवहारेण मम नेत्रे उन्मीलिते । कृपया मां भवतः शिष्यं करोतु" इति ।

बुद्धः प्रीत्या तस्य ललाटं चुम्बितवान् । तं स्वशिष्यं कृतवान् । गच्छता कालेन सः बुद्धस्य प्रियशिष्येषु अन्यतमः अभवत् ।

नरेन्द्र वर्मा, संस्कृत प्रतिष्ठा, तृतीय वर्ष

दूरदर्शनं किमिदं विश्वदर्शनम् ?

तातास्माकं दूरदर्शनं
सकलजनानां हर्षवर्धनम् ।

पश्यतु लघुगात्रम्
किन्तु बहुविधं वैरुध्यम् ।
भूयो भूयो दृष्टं
किमिति न भातिः विचित्रम् ॥१॥

श्रीरामो दशकण्ठच्छेदी
भीमो दुर्योधनवैरी ।
श्रीकृष्णः कंसं निहन्ति
ते कथमत्र सहैव वसन्ति ? ॥२॥

जायतेऽत्र जलपातः
भूकम्पनादिरुत्पातः
अग्नेर्दाहो नदीप्रवाहो
दूरदर्शनस्य तु न च्युतिः ॥३॥

योधगणानां शौर्यं
महात्मनाञ्च चरितम् ।
दीनानां हीनावस्था
कस्मादमुत्र समं भवन्ति ? ॥४॥

हृदयपरिवर्तनम्

एकस्मिन् नगरे एकः श्रेष्ठी प्रतिवसति स्म । तस्य कुटुम्बे एका भार्या आसीत् । सः स्वजीवन- यात्रां सुखेन निर्वहति स्म । परं यदा तस्य पुत्रः यौवनदशाम् अलभत् तदा सः कुसङ्गी अभवत् । सः सर्वदा कुसङ्गिमित्रैः सह वृथा भ्रमणाय चलचित्रदर्शनाय च गच्छति स्म । शनैः शनैः सः स्वमातरमपि रुप्यकाणि अयाचत् । एवं सः स्वपितुः अर्जितं सर्वं धनं दुर्व्यसनमित्राणां कृते व्ययं करोति स्म । तस्य मित्राणि स्वार्थपूर्तिहेतोः तस्य समीपे भ्रमराः इव परिभ्रमन्ति स्म ।

एकदा तस्य जन्मदिवसः आगतः तदा सर्वाणि मित्राणि तं मिलित्वा जलपानं कारयितुं कथयन्ति स्म । तस्य कृते सहस्ररूप्यकाणामावश्यकता आसीत् । सः अवसरं लब्ध्वा स्वपितरमुवाच – हे पितः! मित्रेभ्यः जलपानस्य कृते मह्यं सहस्ररूप्यकाणि यच्छतु । परं तस्य पिता तमकथयत् अहं तुभ्यं सहस्र- रूप्यकाणि तदा दास्यामि यदा त्वम् अद्यैव विंशतिः रूप्यकाणि सायंकालपर्यन्तं कुतश्चिदपि अर्जयिष्यति? सः प्रसन्नो भूत्वा पितरमुवाच – अधुना अहं विंशतिरूप्यकाणि आदाय एव गृहम् आगमिष्यामि ।

गृहाद् बहिरागत्य सः अचिन्तयद् यद् अहं स्वमित्रपार्श्वे गत्वा रूप्यकाणि आनेष्यामि । ततः सः प्रथमं स्वमित्रस्य रामस्य गृहं प्रति गतवान् । तत्र गत्वा सः तं रूप्यकाणि अयाचत् । परं रामोऽवदत् – हे मित्र ! मम माता तु रुग्णा अस्ति यदि मम समीपे धनं तर्हि अहं स्वमातुः उपचारं नाकरिष्यम् । तदनन्तरं सः अन्यस्य मित्रस्य रमेशस्य गृहं प्रति गतवान् । सः तमपि विंशतिरूप्यकाणि अयाचत् । परं रमेशोऽपि मृषा अवदत् । सः रूप्यकाणां विंशतिं दातुं स्वस्य असामर्थ्यं प्रदर्शितवान् । अन्ते सः स्वघनिष्ठमित्रस्य समीपं गत्वा तं रूप्यकाणि अयाचत् । परं सोऽपि रूप्यकाणि दातुं स्वस्य असामर्थ्यं दर्शितवान् ।

अधुना सः नैराश्यं लब्ध्वा चिन्तितवान् – यद्यहं विंशतिरूप्यकाणि न प्राप्स्यामि तदा कथं स्वपितुः समक्षं गमिष्यामि । एवं खिन्नो भूत्वा सः मार्गम् उपाविशत् । सहसा तस्मिन् मार्गे तेन भारं धृत्वा एकः वृद्धः शकटयानवाहकः दृष्टः । स एकस्मात् स्थानाद् अन्यत्र भारं नयति स्म । सः तस्य समीपं गत्वा तमपृच्छत् – भो यानवाहक ! अस्य कार्यस्य कति रूप्यकाणि त्वं लप्स्यसे ? सोऽवदत् – विंशतिरूप्यकाणि । तस्य वार्तां श्रुत्वा सः प्रसन्नोऽभवत् । सः तं वृद्धमपृच्छत् यत् किम् अहमपि एतादृशं कार्यं कर्तुं शक्ष्यामि ? सोऽवदत् नूनम्, अहं तुभ्यम् इदं कार्यं दापयिष्यामि । सः तेन सह तत्र गतः अनेके नराः भारवहनकार्यं कुर्वन्ति स्म । एवं वृद्धस्य साहाय्येन तेन तत्र कार्यं प्राप्तम् ।

शनैः शनैः सन्ध्याकालः अभवत् । सः चिन्तितवान् यदाहं विंशतिरूप्यकाणि न अलभे तदा कथम् अहं स्वपितुः समक्षं गमिष्यामि ? एवं चिन्तयन् सः शीघ्रमेव स्वकार्यं पूर्णं कृत्वा विंशति- रूप्यकाणि लब्ध्वा गृहं प्रति निवृत्तः । स्वगृहं प्राप्य सः स्वपितरमुवाच गृह्यताम् इमानि विंशतिः रूप्यकाणि । तस्य पिता अवदत् अधुना इमानि रूप्यकाणि पङ्के क्षिप । तदा सः क्रोधितो भूत्वा अवदत् – एतादृशं कार्यं मा कुरु यतः मया उद्यमेन इमानि रूप्यकाणि अर्जितानि । अतः इमानि पङ्के मा क्षिपतु । तस्योत्तरं श्रुत्वा पिता उवाच, 'त्वमपि ममार्जितं सर्वं धनं पङ्के एव क्षिपसि स्म । अत एव अहमपि तवार्जितं सर्वं धनं पङ्के क्षिपामि ।' एतदाकर्ण्य तस्य बुद्धावालोको जागृतः । एवं तस्य हृदयपरिवर्तनम् अभवत् ।

सः अचिन्तयत् यन्मम पिता युक्तं वदति अहं स्वपितुरर्जितं धनं येषु मित्रेषु व्ययं कृतवान् तेऽपि मम साहाय्यं न कृतवन्तः । मम पिता एव मम शिक्षकः प्रेरणास्रोतः चास्ति । तस्मात् दिनात् सः जीवने धनस्य महत्त्वं सम्यग्रूपेण ज्ञातवान् । सः कुसङ्गं त्यक्त्वा शोभनः बालः अभवत् । अतः अस्माभिरपि जीवने कदापि कुत्रापि च धनस्य दुरुपयोगः न करणीयः ।

श्रुति शर्मा
संस्कृत प्रतिष्ठा, तृतीय वर्ष

उपनिषदां महत्त्वम्

उपनिषदां महत्त्वं न केवलं भारतीयैः, अपितु पाश्चात्यैः अपि मनीषिभिः निर्विवादमस्ति । उपनिषदो हि तात्त्विकज्ञानप्रभासन्तानेन मानवान्तःकरणप्रदीपिकाः सुखशान्तिसाधिकाः अभ्युदयनिःश्रेयस- वाप्तिहेतवश्च सन्ति । अध्यात्ममीमांसायां देदीप्यमानरत्नभूता इमाः । सर्वेषु अपि भारतीयेषु दर्शनेषु आसां प्रभावः स्फुटम् अवलोक्यते । सर्वैः मनीषिभिः धर्मप्रवर्तकैः तत्त्वज्ञैः आचारशिक्षकैः धर्मशास्त्रकारैश्च उपनिषदां महत्त्वं स्वीयदृष्ट्या स्वीक्रियते । भारत-सर्वस्वभूता इमा उपनिषदो न केवलं स्वप्रभया भारतमेव विद्योतयन्ति, अपितु सकलमपि भुवनं तरुणीवदाभया भासयन्ति ।

भारतीयसंस्कृतौ अध्यात्मतत्त्वस्य समन्वयस्य श्रेयः उपनिषदामेव । एता हि दुःखाधिव्याधिविशी- र्णजगद्दुःखनिवृत्त्यै पापविमुक्तये आनन्दप्राप्त्यै निर्वाणप्राप्त्यै च राजमार्गं प्रदर्शयन्ति । अत एव उपनिषदां देशे विदेशे च शतमुखं स्तुतिः संश्रूयते ।

उपनिषत्सु वेदानां सारभागः सरलया अभिव्यक्त्या प्रश्नोत्तररूपेण आख्यायिकासमन्वयेन च रुचिरां शैलीम् आश्रित्य प्रतिपाद्यते । उपनिषदः अस्माकं जीवने शान्तिप्रदायिकाः आधिव्याधिनिरोधिकाः मनसः शान्तिदाः आत्मनश्च प्रसादिकाः अविद्यान्धतमोविनाशात् ज्ञानप्रभाप्रसारिकाः सर्वशास्त्रमूर्धत्वेन समादृताश्च सन्तीति एतासां महत्त्वम् अक्षुण्णं निर्विवादञ्च, एवं प्रकारेण उपनिषदां महत्त्वम् अस्ति ।

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

विद्या एव तद्धनम् यया सर्वोऽपि मानवीयो मनोरथोऽभिलाषो वा पूर्यते । विद्यया एव कर्त्तव्या- कर्त्तव्य-ज्ञानम्, यस्य अपरं नाम विवेकः अस्ति लाभालाभावबोधश्च ।

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या । कल्पलता इव सर्वसुखसाधिका, सर्वगुणप्रदा, सर्वाभीष्ट सन्धात्री च । एषा मातृवत् संरक्षिका, पितृवत् सत्यपथप्रदर्शिका, कान्तावत् सुखदा मनोरञ्जिका च । इयं कीर्तिप्रदा, वैभवदायिनी दुर्गुणगणनाशेन मनसः पावयित्री च । सर्वमनोरथपूरणकारणात् इयं कल्पलतया उपमीयते । विद्यया एव तत्त्वज्ञानाधिगमाद् ब्रह्मरूपस्य अमृतत्वस्य च साक्षात्कारेण अमृत- त्वावाप्तिः सम्भवति ।

अतः विद्यया समम् एव बुद्धेः अपि समन्वयः अनिवार्यः । बुद्धिमन्तरेण विद्या मौढ्यमेवा- विष्करोति । बुद्धिपूर्विका हि विद्या सर्वविषयसारग्राहिका समस्तसुखसन्निधात्री च । अत एव उच्यते - 'विद्याया बुद्धिः उत्तमा ।'

'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' अर्थात् विद्वज्जनः सर्वत्र पूज्यते । सः कुत्रापि क्षुधार्तः न भवति । विद्यया मनुष्ये विनयः, कीर्तिः, विवेकः आदयः सद्गुणाः आगच्छन्ति । एवं प्रकारेण 'विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्' - इयमुक्तिः सर्वथा उपपन्ना एव ।

बालकृष्ण झा, संस्कृत प्रतिष्ठा, द्वितीय वर्ष

एहि, हसाम

''विलम्बस्य कारणम्''

'आगमने किमर्थं विलम्बः ?' - अध्यापकः कोपेन रामं पृष्टवान् ।

'श्यामस्य एकं रुप्यकनाणकं मार्गे कुत्रापि पतितम् आसीत् । तस्य अन्वेषणे सः मग्नः आसीत् । अतः विलम्बः जातः ।'

'किमेतत् । धनं श्यामस्य खलु नष्टम् आसीत् ? सः तस्य अन्वेषणं कृतवान् स्यात् । भवता किमर्थं विलम्बः करणीयः आसीत् ?'

'यतः ..... यतः तत् रुप्यकनाणकं मम पादस्य अधः एव आसीत् ।'

''तदर्थं तथा .....''

पतिः पत्न्या सह स्कूटरयानेन गच्छन् आसीत् । मध्येमार्गं पत्नी यानात् पतितवती । पतिः ताम् उपेक्ष्य गृहं प्रत्यागतवान् एव ।

पत्नी कथञ्चित् गृहम् आगत्य पतिं कोपेन पृष्टवती - पतितां मां दृष्ट्वा अपि साहाय्यम् अकृत्वा, माम् अस्वीकृत्य, किमर्थं भवान् आगतवान् ? इति ।

तदा पतिः शान्तस्वरेण उक्तवान् - ''परह्यः पयोहिमस्य (आइसक्रीम) खादनसमये भवती उक्तवती आसीत् खलु - 'पतितं न स्वीकरणीयम्' इति । तदर्थम् अहं तथा कृतवान् ।''

''पुत्रेण ज्ञातुं तु .....''

सत्यस्य माहात्म्यं ज्ञापयितुं पिता पुत्रं 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटकं दर्शयितुं नीतवान् । नाटकं दृष्ट्वा प्रत्यागमनसमये पिता पृष्टवान् - 'नाटकं कथमासीत् ?'

'उत्तमम् आसीत्' - पुत्रः उक्तवान् ।

'नाटकदर्शनतः भवता का नीतिः अवगता ?'

'सत्यं न वक्तव्यम् । सत्यवक्तुः श्मशानम् एव गतिः भविष्यति इति मया ज्ञातम् ।'

''चिकित्सा .....''

'भवान् पशुवैद्यः किम् ?' - कश्चन आगत्य पृष्टवान् ।

तदा पशुवैद्यः उक्तवान् - ' आम् । भवतः कः रोगः ? वदतु । औषधं दास्यामि ।'

''अनन्तरखादनस्य कारणम् .....''

'अहं मम पत्नी च प्रतिदिनं रात्रौ रोटिकां खादावः । मम खादनस्य अनन्तरम् एव सा रोटिकां खादति प्रतिदिनम्' इति उक्तवान् वृद्धः शम्भुनाथः ।

'भवतः पत्नी निश्चयेन श्रेष्ठा पतिव्रता एव' इति उक्तवान् मल्लिनाथः ।

'तथा किमपि नास्ति । मम खादनस्य अनन्तरम् एव सा रोटिकां खादति यत् तस्य कारणं तु आवयोः एका एव कृत्रिमदन्तावली अस्ति' इति उक्तवान् शम्भुनाथः ।

सविता, संस्कृत प्रतिष्ठा, द्वितीय वर्ष

सुभाषितानि

दुर्जनेन समं सख्यं प्रीतिं चापि न कारयेत् ।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ॥
-हितोपदेशः

संयोजयति विद्यैव नीचगापि नरं सरित् ।
समुद्रमिव दुर्धर्षं नृपं भाग्यमतः परम् ॥
- हितोपदेशः

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥
- नीतिशतकम्

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥
- नीतिशतकम्

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रञ्जयति ॥
- नीतिशतकम्

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनधनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः ।
परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा ॥
- नीतिशतकम्

यादृशैः सेवते भृत्यैर्यादृशान्स चोपसेवते ।
कदाचिन्नात्र सन्देहः तादृग्भवति पुरुषः ॥
- पञ्चतन्त्रम्

राजीव रञ्जन यादव
संस्कृत प्रतिष्ठा, प्रथम वर्ष

विनोदकणिकाः

१. एकः चौरः आम्रवृक्षम् आरूह्य आम्रफलानि त्रोटयन् आसीत् । तदानीम् उद्यानपालकः आगतः । सः तं चौरं दृष्ट्वा आक्रोशेन गर्जितवान् – "अये ! चौर्यं करोति ? लज्जा न भवति ? भवतः पिता कुत्र अस्ति ?"

चौरः – "मम पिता अन्यस्मिन् वृक्षे अस्ति ।"

२. भिक्षुकः – (पथिकं वदति) पञ्चरुप्यकाणि देहि भ्राता ।
पथिकः – नास्ति ।
भिक्षुकः – भवतः जीवनं सफलं भविष्यति ! चत्वारि रुप्यकाणि ददातु ।
पथिकः – नास्ति भोः ।
भिक्षुकः – तर्हि एकं रुप्यकं ददातु ।
पथिकः – मम पार्श्वे एकं नाणकम् अपि नास्ति ।
भिक्षुकः – तर्हि भवान् मम बन्धु एव । एकं कार्यं करोतु भवान्, मम दण्डं स्वीकृत्य अग्रे अग्रे चलतु । भवतः जीवनं निश्चयेन सफलं भविष्यति ..... ।

३. एकः चिकित्सकः व्याधिग्रस्तः जातः । सः अन्यस्मात् औषधम् आनीय सेवते स्म । एतत् दृष्ट्वा तदीयः पुत्रः पृष्टवान् – "भो तात ! भवान् तु स्वयं वैद्यः एव । एवं स्थिते किमर्थं वा आत्मनः चिकित्सा स्वयं न क्रियते ?" इति ।

वैद्यः उक्तवान् – "मम चिकित्साशुल्कम् अधिकम् । अतः ....." इति ।

४. गुरुः – (व्याकरणपाठानन्तरम्) "कम्बलम् आच्छाद्य शयनं कृतवान् । एषः कः कालः ?"
शिष्यः – शैत्यकालः ..... !!

५. एकदा एकः चञ्चलप्रवृत्तिकः पुरुषः पण्डितसमीपम् आगत्य वदति "ममहस्ते कण्डूतिः दृश्यते ।"

पण्डितः वदति – "तर्हि धनलाभः भविष्यति ।"

"मम कर्णे अपि कण्डूतिः दृश्यते ।"
"एवं तर्हि कर्णाभरणलाभः भविष्यति ।"
"मम कण्ठे अपि कण्डूतिः दृश्यते ।"

तत् श्रुत्वा पण्डितः अल्पकोपमिश्रितेन स्वरेण उक्तवान् – "भवान् त्वरया वैद्यं पश्यतु, यतः भवतः चर्मरोगः अस्ति ।"

नरेन्द्र वर्मा,
संस्कृत प्रतिष्ठा, तृतीय वर्ष

Aliza Noor

Sanya Dhandania

Riya Garg

Sanya Dhandania

Dharna Saini

Dharna Saini

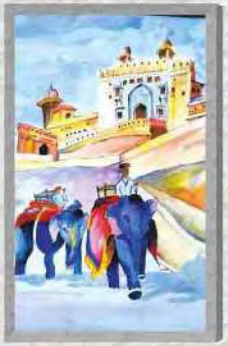

Shuchita Jain

Sanyam Kazia

Subhash Bezawada

Shayari

INDEX

S. No.	Title / Author	Page No.
1.	A Comparative Study of Petrol and Diesel / Dr. Ambika	68
2.	Imagining the making of a Mahatma / S. N. Prasad	70
3.	Pesticides in Fruits and Vegetables Concerns and safety / Dr. Monika Kaul	71
4.	Playing with Revolutioneries / Dr. Sanjay Kumar	73
5.	Technology and Students / Dr. Baljeet Kaur	74
6.	The Need for Value-based Education / Dr. Satyendra Srivastava	76
7.	A Circle of height / Anirbaan Banerjee	78
8.	Sadness / Suyashi Smridhi	79
9.	Stand up ! / Pragya Thakur	80
10.	Haikus / Swarnika Ahuja	80
11.	But you need a Bit More Courage / Pragya Thakur	81
12.	A Little Winter / Swarnika Ahuja	81
13.	When People Leave / Muskan Nagpal	82
14.	Reading at the LP / Rahul Chaudhary	83
15.	The Other Side of the Coin / Shifa Naseer	84
16.	Her Life / Shifa Naseer	84
17.	Dear Love / Shifa Naseer	85
18.	The Stranger / Muskaan Nagpal	86

A comparative study of Petrol and Diesel

(Dr. Ambika, Department of Chemistry)

Petroleum is a basic natural fuel. It is a dark greenish brown, viscous mineral oil, found deep in earth's crust. It is mainly composed of various hydrocarbons (like straight chain paraffins, cycloparaffins or napthenes, olefins, and aromatics) together with small amount of organic compounds containing oxygen nitrogen and sulphur. It is often referred to as the "black gold. Petrol and diesel are refined products of petroleum consisting of a mixture of hydrocarbons, additives, and blending agents. The composition of petrol and diesel varies widely, depending on the crude oils used, the refinery processes available and the product specifications (**Table 1**). Petrol is mainly used to run lighter vehicles such as cars, motor bike while diesel is mainly used for heavy vehicles.

About 70% of diesel is consumed for transportation and only 30% of it is utilized for other non-transport activities (**Figure 1**). In Delhi, with increasing population (between 2004-05 and 2011-12) increased number of vehicles are there on the roads (the number of vehicles increased nearly 70%) due to which the air quality of the city has been degraded.

Table 1: Comparison of physical and chemical properties of petrol and diesel.

Parameters	Petrol	Diesel
Physical State	Liquid	Viscous liquid
Colour	Colourless	Yellow
Carbon atoms per molecule	5-12	≥12
Boiling range	40-120°C	250-320°C
Density	0.66 to 0.70	0.825 to 0.925
Energy Content	34.8 MJ/L	38.6 MJ/L
Solubility	Water insoluble	Water insoluble

About 70% of diesel is consumed for transporation and only 30% of it is utilized for other non-transport activities (**Figure 1**). In Delhi, with increasing population (between 2004-05 and 2011-12) increased number of vehicles on the roads (the number of vehicles increased nearly 70%), the air quality of the city has been degraded.

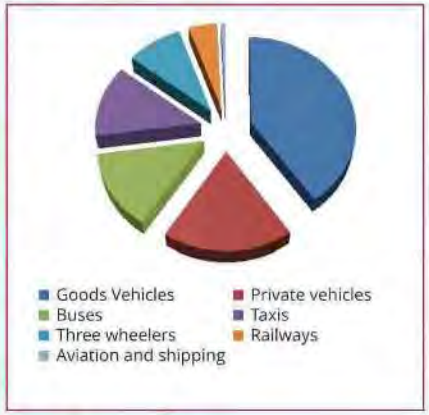

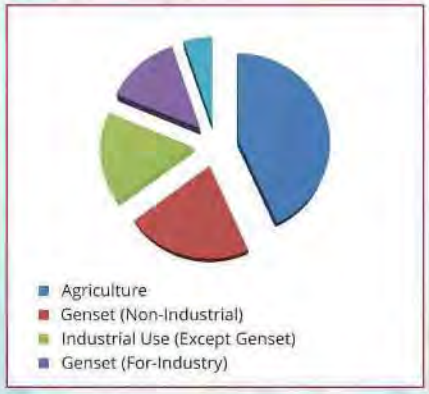

Figure 1: (**a**) Consumption of diesel fuel in transportation puposes; (**b**) Consumption of diesel fuel for Non-transport purposes.

In recent years the concern about exhaust emissions from motor vehicles has increased. Recently, there has been much debate about which fuel, diesel or petrol, is the cleanest in terms of exhaust emissions. In terms of motor fuel, diesel is more effecient, giving almost 1.5 times the fuel efficiency of petrol. Both petrol and diesel produce carbon monoxide (CO), carbon dioxide (CO_2) and nitrogen oxides (NOx) during combustion. Emissions from diesel vehicles have been reported to be significantly more harmful than those from petrol vehicles. The emission of sulphur dioxide (SO_2) from diesel engines in the atmosphere may lead to acid rain. Diesel engines generally produce 28 times less carbon monoxide than petrol engines but emit around 20 times more nitrogen oxides than petrol cars which could be attributed to the relatively high nitrogen and sulphur content in diesel as compared to petrol. Moreover, the diesel engine exhaust also consists of fine particulate matter (e.g., soot,) which is rarely produced in significant quantities by petrol engines.

Nitrogen oxides and particulate matter can cause life threatening diseases such as respiratory diseases, lung cancer, and heart problems. CO_2 is a greenhouse gas, and contributes to global warming (**Table 2**). Thus, an increase in diesel cars at the expense of petrol cars could have important implications on urban air quality, smog formation, global warming and other environmental issues.

Table 2: Comparison of exhaust products of petrol and diesel and the health hazards associated with high concentration.

Contaminant	Petrol	Diesel	Health Hazards
CO	High	Low	Reduction in the ability of the circulatory system to transport O_2 Impairment of performance on tasks requiring vigilance
CO_2	High	Low	Global warming
Nitrogen oxides (NO_x)	Low	High	Increased susceptibility to respiratory pathogens
Sulphur dioxide	Low	High	Increased prevalence of chronic respiratory disease, Acid Rain
Particulates Matter	Low	High	Respiratory diseases, Lung Cancer, heart problems, premature death

Note: Use of catalytic convertors has significantly reduced the amount of CO, NOx from petrol engines.

To replace the polluting fuels (petrol and diesel), alternative fuels are currently being developed, for example compressed natural gas (CNG), liquefied petroleum gas (LPG), hydrogen, alcoholic fuels and battery operated vehicles. In conclusion, to produce a cleaner environment for all to live and work in, the development of alternative, cleaner and sustainable fuels is essential.

Imagining the Making of a 'Mahatma'

S. N. PRASAD

The name of an institution and individual got permanently tagged to your life when you entered this College. Ever wondered who he was and how does the legacy of this lean and frail man continue to shape your lives? Without being hagiographical let me take one glimpse into the extraordinary life of this ordinary man, then pause to re/consider.

As a College student, Hansraj heard a speech by Swami Dayanand extolling the crowd to donate something to the larger social cause. Penniless Hansraj dependent on his elder brother (who earned Rs 40 a month) resolved "Why don't I give up myself?" The decision was made then. Upon graduating, instead of taking up a job, Hansraj started the first D.A.V. School, along with, Gurudatta Vidyarthi. Later he served as the Principal of DAV College, Lahore for the next 25 years, without accepting a salary and after retirement committed his life to free social service.

Let's pause and re/consider, because this is the moment when the 'Mahatma' we encounter begins to take shape.

First, that moment of transformative surrender of the self to an Idea - a profound paradox. What did he surrender and who was in charge after the surrender? Does it mean he became a powerless tool in the hands of a social cause? Perhaps no. The English word 'surrender' carries a limited sense of giving up to a superior power which proves somewhat inadequate here. Then what happened to Hansraj on that day. Conventionally this moment has been explained thus: "Essentially, this was a letting go of a small self for a much greater self" or perhaps better, in saying: "Instead of just being a giving up of a limited self, this was its orientation towards or expansion into a much bigger form." The thesis now reads: the 'lower' self, centered on the fulfillment of the physical and the material changes its orientation or expands to the 'higher', now centering on the mental and the spiritual.

This cathexis of consciousness from one set of goals to another (supposedly lower to higher) is mired in theoretical complexities and contradictions. However it's difficult to move from this explanation into a better one. So, let's stop worrying about theoretical satisfaction and think if it is an explanation that some of us can identify with. If you have listened to a brilliant leader's speech or undergone a spiritual transformation, you know what Lala Hansraj must have felt that day!

A little difficult to accept, right? Think! What if someone or something triggered a joyful, satisfying and life-transforming experience that helped you transcend your fears and limited beliefs about yourself? Can you visualize what such an experience would mean for you?

Now on to another aspect of this transformation. When we let go of a limited and fearful sense of ourselves, we also surrender the idea that we are better than anyone else. We realize our humanness, which develops our sympathy for others. Isn't that interesting! In this new emotional state there is not much to compete or conflict for. Released from conflict and competition new vistas of thought, peace and freedom open up. Do these explain what is often written about 'Mahatma' Hansraj.

> From the inception of DAV on 01.06.1886 in the Arya Samaj, Lahore, Hansraj treated his staff and students as his own kith and kin. Boys of DAV school and later of the DAV College were treated like his own sons, irrespective of caste, creed or colour. Sir Shahabuddin, Speaker of the Punjab Legislative Assembly of undivided India and an ex-DAV School student wrote on his demise:
>
> When my father died, I became fatherless,/
> When my mother died, I became motherless,
>
> Today on the death of Lala Hansraj, I am /
> Reduced to the state of an orphan.

Cut to the present. Does Hansraj's way of relating to colleagues, students and institutions survive in your College? Will you feel you lost something precious when you leave this College?

I know your answers will vary and I respect the diversity. But, if the answers to the above questions are 'yes' for some of you, you know where these forces originate. No, not in an individual called 'Mahatma' Hansraj, but in a unique ability of the human self to transform itself. It's in us as much as it was in him. The reason why this man is significant for me is because he consecrated that ability into his guiding spirit and that changed the course of India's education history.

Pesticides in fruits and vegetables: Concerns and Safety

Dr. Monika Koul, Department of Botany

Nurturing healthy dietary habits among young adults is considered to be very important as this is the critical period of their growth and development. It is often advised that college students should stay away from fast foods that have high amounts of salts, sugars and trans-fatty acids. Nutritionists advocate that fruits and vegetables should form an important component of the diet as these are rich in various substances and contain minerals, fibre, phytonutrients and antioxidants. These are also referredto as nature's fast foodsas these can be grabbed anytime and are portable tocarry and eat. However, in the last few years reports are coming that many of these fruits and vegetables considered safe and good for health are actually laden with pesticides and

harmful toxic chemicals. Studies conducted by national laboratories and independent private institutes have found that there is an alarming percentage of pesticide residues in the fruits and vegetables. The concentration found is much above the permissible limits prescribed by Food Safety and Standards Authority of India (FSSAI). According to Centre for Science and Environment (CSE), Delhi, high levels of pesticide residue are present in milk as well as fruitjuices available in the market. KeralaAgricultural University (KAU) reported dangerous levels of pesticide residues in cauliflower, cabbage, curry leaves, green chillies and red onions. Apple, the legendary health food, has been found to contain pesticides such as Bavastin and Dichlrovas. Banana has been found to be contaminated with Chlorodane 45% above the FAO (Food and Agricultural University)safe limits. Besides that vegetables such as okra, cauliflower, spinach and other vegetables growing along the Yamuna banks in Delhi and adjacent vegetablefarms in National Capital Territory of Delhi (NCT) are also reported to be highly contaminated with pesticide residues of cypermethrin, heptachlor and malathion.

Epidemiologicaland laboratory studies have clearly demonstrated the pesticide exposure can cause adverse health effects. According to Environmental Protection Agency (EPA), pesticides have active ingredients that are potential human carcinogens. Besides that Hodgkins disease, multiple myelonema, leukaemia and skin cancer can be caused by excessive use of DDT, organo chlorine containing pesticides and endosulphan. Some pesticides have high residence time in the environment and damage the nervous system. People exposed experience psychiatric and neurological problems such as agitation, irritation, weakness, forgetfulness and depression. Workers who are in constant contact with the pesticides also show poor performance, motor skills and loss of memory. Compromise of immune response in a person exposed to pesticides is also observed.

Students and young adults are more susceptible because of the varied diet they consume including milk and juices. Besides, this age group is more energetic and have high rate of breathing and spend more time outdoors due to which they are more likely to show negative health effects. It is therefore essential for the young generation to be more aware of this pesticide menace and follow certain precautionary measures. The fruits and vegetables should essentially be washed before eating. The ideal way is to use potable running water with brushing to wash away the pesticides adhered to the epicarp of fruits. Two percent salt water is considered good for washing the fruits which have soft peels.Some fruitsand vegetables can be kept in saline for one to two hours and then washed before eating. Vinegar readily available in the markets is also considered good for washing the vegetables before cooking. The ideal ratio is one part vinegar mixed with nine parts water. Peeling of skins before consumption is another way to get rid of the harmful chemicals. It is also important that our food basket should include diverse food stuffs so that there is no accumulation and magnification of a particular chemical pesticide in the body. These things will serve a long way in protecting the younger generation from these deadly toxins.

Playing with revolutionaries

(Dr. Sanjay Kumar, Department of English)

Playing performance with people from all sides of the economic spectrum, I spent some time thinking who would it be for this exercise. Many in Pandies would qualify. My students turned colleagues abound in the revolutionary and their relationship with me as a fellow developmentalist, that they are performers who can change the world is beyond any doubt. But and here is the threat of the obvious and the attraction of going beyond the known. I will talk about a young girl I have interacted with in the course of the workshops that Pandies conducts. Peripheral contact. Can I observe them from a distance, in the vast count of thousands of young that I have worked with, hazy pictures, many coalesce into one. And when I say perform as revolutionary what do i mean? Like, does one have to do something in order to register oneself as a revolutionary? Is it enough to break the conscripting stereotype in the layers of thought? Or is it more true the other way around, that a revolutionary is actually about what happens inside, that's where the real performance takes place? May be s/he is all about the group, may be s/he does not ostensibly relate with the group, is s/he still a revolutionary?

Kamla, I am back in 1997, a little girl in a slum called Yamuna Pushta, no that is not the name of a colony, it isn't a colony. Yamuna is the name of the big river that flows through the city of Delhi, and Pushta is the raised barrier, a little wall that tries to mark the space that the river should not transgress. But who stops rivers. On the banks, a slum housing over 20000 people, supposedly the 2nd largest slum in India (after Dharavi in Bombay). Pandies worked there for nearly four years, our first foray into sustained direct interventionist developmental activism. We got in via the HRD Ministry, Govt. of India (we were still respectable in those days), to do awareness theatre around issues of slum women's rights - violence, marital rights, health esp. gynae issues. Seeing the rapport we had built with the residents - the women loved us and the men tolerated us - the ministry asked us to train women on their rights, get interventions from doctors, lawyers and other NGOs and do a day-to day programme for two years. After a series of group meetings we agreed to try it out for a year. We worked with women, made them create theatre around issues that they felt concerned with the anecdotes, their experiences and their narratives (the beginnings of what evolved as the unique pandies' methodology). But working with women is all fine, what do you do with their children in a lowest of the low class slums constantly exposed not only to the usual vagaries of Delhi's weather but also to the whims of the mighty river, to the incessant threats of evacuation.

Yes, I remember Kamla, a girl child, 11-12 years old, daughter of migrant labourers, shy not going to school, barely able to speak Hindi. She was active in the classes, specially the theatre. My favourite and it was obvious. She started speaking. Performing. Slum, for me the word has lost negative connotations, just descriptive, a collection of people, ephemeral, will be removed by the government (as this one was) have worked in too many. The slum, it stifles dreams, desires. Not this one's. Children in these spaces think of

becoming clerks, drivers, workers but her first articulation was to be a doctor. She wanted to be like me, like the other facilitators, but above all like the doctor who came and fixed women there, women with infected vaginas, the result of a government program for putting in IUDs and then forgetting about it for literally years. We, the Pandies, made her a promise, we would see her become a doctor, whatever it took.

Why do I cite her as a revolutionary, prioritise her over so many others who fit the label with greater ease? She wasn't the leader of her group, she didn't 'do' anything. Is that true? It was the ability of her mind to perform miles ahead of itself that makes me remember her.

We lost Kamla, like we have lost so many of the young. Disappeared, one day. Parents said she was kidnapped by someone at night. It does happen in Delhi's slums. There are no locked, bolted doors and young children, specially girls disappear. Are the parents/ guardians involved? Chasing many we have found some even in the brothels nearby. But I never saw Kamla again. Could she have retained that revolutionary self regardless of where she is?

Technology and Students

(Dr. Baljeet Kaur, Department of Computer Science)

Are these two different entities? Can one survive without another? Technology would have not reached this fame and enjoyed this popularity if it were not for the youth. Technology has permeated the web of the society and breathes through each one of us.

How as parents we swell with pride when our toddlers acknowledge the sound of technology, when they respond to the magic of *touch* and when an ongoing game on a device helps them swallow the next bite of food. Very soon that pride is replaced with deep anguish when throughout their student life these kids surround themselves with gadgets and to break through this armour is impossible. As parents, teachers and family we console ourselves by blaming the technology. We blame the exponential growth of the microchip for all our woes in relation to our young ones.

Many years ago when the written word came into being, reading the books or any printed matter must have faced similar resistance. Books exposed the youth to the unknown, made them aware, made them moody. They got plastered to books, became un-communicative, read objectionable material. Sounds familiar?. Some cultures do not encourage education to women as it may spoil them. Same is known about the television and radio. Many households would not buy them as they were a threat to the innocence of the growing kids in the family.

The students of today have not known the Vividh Bharti on Medium wave or the DD1 TV channel. They were born into the waves of video games and playstations. They have learnt to read, recognize shapes, colours and flowers using computer games; sang along the karaoke, learnt to drive while playing *Need for Speed* and prepared for exams using online tutorials and *Skype*. This is their reality. They have not known any other. The virtual and the real are inseparable to the extent that the friendships and bonding are also over the internet. Personal interactions tend to be non-existent which borders to being unhealthy and hence becomes the reason for various crimes towards self and the others. On the other hand, their exposure to information is multidimensional. The mind boggling vast expanse of science, finance, literature, culture and commerce is available in no time. This vast mine of data is continuously being fed by great minds and being utilized by enthusiasts all over the globe. The young generation is fortunate to have this magic come alive in their lifetime. And they are learning at a pace that was un-imaginable until now.

We all agree that embracing the changes is the way any society grows. Knowledge transfer using books, media, poetry and discussions have always been the sign of an open culture, a culture which adapts and grows. Which generation has not expressed the fear that their youth is being misled? Have the cultures not survived because they could use the liberties extended to them and learnt from the exposure of new ideas?

Being in the field of Computer Science I have closely observed the fears that surround technology. Of late the fears have magnified. Still, I would like to mention some positives. Maybe they help assuage the fear and show light to some of us who do not know where technology can be best put to use. Our students earn handsomely through softwares they develop for customers who post their requests online. Software for use in hospitals, hotels, educational institutions, shops, malls are majorly developed by students. Website development and Apps development is a market which thrives on our youth and their expertise. Keeping aside Computer Science students who have the advantage of knowing technology as a tool, students of all disciplines have explored the endless possibilities to their advantage. Much editing work in English and Hindi is floated by publishers where students having good command over the language get paid by the number of pages. Our students have started online tuition sites where they recruit trainers and tie them up with students in India and overseas. Uploading your skill based videos on YouTube and earning through the advertisements that are screened during its view is another avenue that is explored by our students where skills like singing, putting up a play, lecturing on an interesting topic, have helped students build confidence and a bank balance. The opportunities are vast.

Wildlife conservation societies track animals and provide them with nourishment and medical help with the aid of geographic information systems. Having been in touch with NSS of this college, I have witnessed the online media connecting to the blood donors in no time.

The ills are heavily outnumbered by the privileges and comforts that come our way. We need to acknowledge them, and propel our youth towards them by making them aware of the possibilities of upward growth. During our interactions with them, let us weave in the opportunities our students can enjoy. Let us sow the seeds of development.

The Need for Value-based Education

(Dr. Satyendra Srivastava, Department of Philosophy)

"Look for three things in a person- intelligence, energy and integrity. If they do not have the last one, don't even bother with the first two"

- Warren Buffett (1930-)

'Character is higher than intellect' when this statement was given by American poet R W Emerson (1803-1882) in a lecture that he delivered to Harvard University students around 150 years back then it left an everlasting impact on young minds of academic institutions. It accorded primacy to moral values over intellectual competence. Actually, value is an omnibus term. It includes so many ethical notions like honesty, self-respect, respect for others, love and compassion to all, duty towards country, society and family, self-less service, social commitment etc. Being teachers, we are responsible for inculcating these values in ourselves as well as our students. Abraham Lincoln's letter to his son's teacher is worth citing:

"My son starts school today.....He will have to learn, I know, that all men are not true. But teach him also that for every scoundrel there is a hero: that for every crooked politician, there is a dedicated leader.

Teach him that for every enemy there is a friend. It will take time, I know a long time, but teach, if you can, that a dollar earned is of more value than five of found.

Teach him, to learn how to gracefully lose... And also to enjoy winning when he does win. Steer him away from envy...

Teach him, if you can the wonder of books... But also give him quiet time to ponder the eternal mystery of birds in the sky, bees in the sun, and flowers on the green hillside.

Teach him, it is far more honorable to fail than to cheat.

Teach him to have faith in his own ideas, even if anyone else tells him they are wrong.

Teach him to be gentle with gentle people and tough with tough.

Teach him to listen to all men... But teach him also to filter all he hears on a screen of truth...

Teach him, if you can how to laugh when he is sad. Teach him there is no shame in tears.

Teach him to sell his brawn and brain to the highest bidder but never to put a price tag on his heart and soul.

Teach him gently, but do not cuddle him, because only the test of fire makes the fine steel...

This is a big order, but see what you can do... He is such a nice little fellow"

For a value based education, this letter can be a guideline for both students and teachers. The aim of education is not only to top the college / university and get a job. One must have some social commitments while enjoying his/her personal achievements.

Modern science and technology have made human beings lose their sensitivity. A P J Kalam to said that *we have guided missiles but misguided human beings*. Job may be one aspect of education, but it can not and should not be the only goal of education. The same message was conveyed by Nobel laureate Venkat Ramkrishnan (Chemistry, 2009) and the protagonist of Hindi movie 'Three Idiots' when he says that *'do not run after success; go for excellence'*.

The greatest job of a teacher is to prepare the next generation to face the world. The real examination of a student's life begins when he leaves the College and / or University and enters the practical world, so it's our duty to tell and encourage them how to face the problems of the actual world.

A.P.J. Kalam's *'Ignited Minds'* is a very important book for value based education. His famous song – I realize, small aim is a crime, inspires us to think big and contribute to society. The same view was expressed by Dr. Radhakrishanan; *"The aim of education is not the acquisition of information, although important, or acquisition of technical skills, though essential in modern society, but the development of that bent of mind, that attitude of reason, that spirit of democracy which will make us responsible citizens."* To achieve this ideal of education, Kalam gives importance to both parents and school teachers, who act as role models for children initially. This reminds us the famous *dictum* of Spanish philosopher George Santayana – *"A Child educated only at school is an uneducated child."*

In this book, Kalam's emphasis is not only on motivating students but also making teachers accountable. He expresses this idea by a teacher's statement – *'Give me a five year old child. After seven years, no God or Devil will be able to change the child'*. But Kalam does not stop at this, he further asks, *"Will all teachers be such Gurus?"*. It is clear that he wants to fix accountability for the teachers. It is a well known fact that the teacher's own character plays very important role in the process of imparting knowledge. Mahatma Gandhi wrote in his autobiography that a coward teacher can not teach about courage to his students.

For value based education, the writings and lectures of Swami Vivekananda can be our best guiding principles. In an interview on 24th January, 1898, he said-

"We want that education by which character is formed, strength of mind is increased, the intellect is expanded, and by which one can stand on one's own feet."

Finally, I wish to suggest that for a value based education we should not only ask our students to read relevant books but also tell them some real stories from day to day life. We could encourage them to read autobiographies of great thinkers and achievers such as Mahatma Gandhi, Benjamin Franklin, Nelson Mandela and A P J Kalam. The lives and teachings of Vivekananda, Madam Curie and Martin Luther King Junior will ignite not only our minds but also our heart.

A Circle of Light

(Anirbaan Banerjee, BA(H) English IInd Year)

A silent light, a holy light
Rises each morning
With a sudden falseness
It appears unannounced
But who am I to complain?
It leaves too soon
Tempting me
Bidding me farewell
Petrifying me
With false placations
That it will return

The bleeding sun
Beating a resilient retreat
Penetrating through a tiny hole
Against the odds of impervious doors
Bright and focussed
Unsettled invisibility
Rising towards infinity
Sparkling dust

I drink in the light
When I don't choke on the darkness
My dirty corpse
Lit up with a spotlight
Like a spectacle of beauty
O how I fear it
And love it
Enticed by it like a savage
Allured by its magic
Yet the beast flees
From the hot heat of the warmth

A forgotten faith
Beckons at me whenever
The solitary bulb glows
And I yearn for and dread
That moment
When I plunge once more
Into darkness

This poem explores the life of a person in solitary confinement. The narrator's room has no source of light except a single hole in the wall through which a circle of light enters. Driven insane by isolation and the inability to have faith in anyone or anything, the narrator is both fascinated by this light and at the same time deeply apprehensive of it. This light gives the narrator hope of sensing the world outside, and this gives rise to a conflict of hoping for the uncertain or reconciling oneself to the reality.

Sadness

(Suyashi Smridhi, BA(H) English Ist Year)

They say Sadness brings you violent,unrestrained misery.
A big boulder tied around your neck.
And you jump into the unwavering water,
Already choking with the weight
Of emotions unfelt, of feelings unheard...
Scrambling to come up,
Kicking about your arms and legs like a clumsy spider.
A spider caught in its own snare.

They say Sadness makes you dead while alive.
The boulder sits heavy on the bottom,
Unwilling to budge this way or that
And all your efforts dissolve all around,
Indistinguishable now from the vicious liquid.
And so you wait, seated cross legged on the floor.
You wait patiently for the black darkness they talk about.

They say Sadness is the Night reincarnate
So you can't trace the path of the Starry Lights,
Neither can you spot the feeble moon from the place you're at.
Drooping eyelids, fighting to remain open,
Unwilling to miss the advent of the black tragedy,
Of the void, of the nothingness.
But all you can see is a curtain of white,

Spiraling around you slowly and steadily.
They anointed Sadness with an eternal murk
But did they tell you that Sadness is your immortal saviour?
It's your blazing sun during the unimaginably harsh winter.
It's the breath that you take between the lines of a poem.
It's your shining armor amidst the cries of battle.
It's your glistening hope in the thing in nothingness.
It's the infinite layer that gives you all eyed perspective.
It's the hidden meaning in the illogical, frayed sentiment.

Maybe Sadness isn't the gory black that you witness during the day,
Maybe it's the tranquil white that doesn't let you sleep at night.

Stand up!

(Pragya Thakur, BA(H) English IInd Year)

You can hear him say.
But, what about your mum?
Who'll be called to your school
Who'll have to take her day off from the office
And miss out on her pay.
Who will definitely defend you,
And pay that poor boy,
A bit too hard,
And will drive you out into your car
To your home
Will serve you well
Make you do your homework
And will wish,
She wasn't the only one to do it,
altogether
The washing, the cleaning, the cooking,
The mopping,the driving, the grooming of her
unmannered 5 yr old Jacob.

For whom she had to make sure everything was full
in the house,
His toys, his colours, his pencils, his shoes, his
cereals, his oats,
For whom she had to make sure everything was full
in the house,
His joys, his birthday parties, his friends, his life,
And to buy that world for him from the market,
She had leave
an empty house.

To buy that world from the market,
She had to work,
To buy that world from the market,
She had to get her pay,
To buy her Jacobs' happiness
She had to stay
in her office.

So,
You want to ignore it
You just want to ignore the call,
Cause, you know it,
That if you did
Push it a bit too hard,
You'll break it.
You'll break his nose and your
mumma' s heart!

Haikus

(Swarnika Ahuja,
BA(H) English IIIrd Year)

Time and rainwater
Gather at my feet
-A sad thought.

Cold Mountain rain
While bitter tea
Boils away on the stove

On my way to the cemetery
A withered leaf falls
On my withered hand

This way and that way
The mind stumbles back again
-counting memories

A single leaf trembles
Season of passing autumn

But you need a bit more - Courage *(A slam poem)*

(Pragya Thakur, BA (H) English IInd Year)

Don't!
Don't you just punch me in my stomach again
With your big fat fist
Cause you don't know maybe, but it hurts,
It hurts too hard
It hurts like hell
It hurts like a thunderstorm striking you down
It hurts like lightening
Thrown upon you
And you end up shivering
As if stuck in the north pole,
As if you got into a black hole
As if there is no more life
in you
left enough,
To push into him, a bit,
A bit,
A bit,
A bit more,
A bit more and more,
And a bit more ,
Cause you've almost reached it!
It's going to end.
Just put in a bit more effort.
You'll soon be there,
Smashing him,
Hitting right into your bully's face,
Breaking his nose bleeding
Just as he did,
But you need a bit more,
Courage.

A Little Winter

(Swarnika Ahuja
BA(H) English IIIrd Year)

Summer fades
like an unremembered
dream,
heavy and breathless...
Pour me a glass of moonlight
for sleep eludes me tonight.
Brew me one of those
poems sweetened
by your charm
flickering and fumbling
out of your innermost
dreams,
dreamt by the fireside
carelessly,
mindlessly,
thoughtlessly.
With a staggering numbness
of a pair of wistful eyes
staring into the deep darkness of the sky.
I find my throat, wintry and dry
reddened by the numberless times
innocence dripped from your face
in the face of my own parched desolation,
'It is just a little bit of winter madness.
That is all'.

When people leave

(Muskan Nagpal, BA(H) English Ist Year)

I don't remember what age I was when I had first felt a lingering sense of loss inside myself.

People don't always mark when they leave, sometimes they leave in voids of echoes. And sometimes, they leave in a way that they hold onto you too honestly. Honesty which whispers round your routine, in standing inside the bathroom while you're waiting for the bucket to be filled, until suddenly you realize that even whispers can turn you deaf. So the bucket is filled. It is over fill.

I was walking down an aisle of repeated metaphors sitting inside the church praying to be healed. But I couldn't remember how old I was. There was no measure of time. There were only fragments stretched out like corridors made up of vacuum. So much hung in that vacuum devoid of the warmth of gravity. But there I was, staring at the clock, waiting for it to strike forever. Only later did I realize that it had already stopped working.

Have you ever asked someone a question and wondered at the obnoxious idea of the word "obvious" when they answered with "OBVIOUSLY"? Has it ever hit you how humans become so used to

certain gaps in their life that obvious is the most obvious answer? And sometimes, we dive too deep into obvious. The absence of the obvious becomes too obvious. Or does it?

In my thoughts, there is a solid floor of vapors. It is too hard to sleep on. So I just jump over it. It has cracked, here and there. It is too unsafe to sleep on now. Just like when you look at a freshly emptied almirah, with nothing but hangers and it gets too difficult to decide what to fill it with. So you just let it be and it exists there like a crack you're too afraid to think of. Or you have too much to fill it with. So you suffocate that crack.

I cannot sum up the feelings. Calculations make it gravely precise. I am going to let it flow with a rapid exuberance that now feels like home.

Reading at the LP

(Rahul Chaudhary, BA(H) English Ist Year)

If you would've asked about me from anyone who knows me, they would tell you that I am that guy who attends all the classes. Well, this was true, but only till my first semester. In my second semester, things have changed drastically. Thanks to the winters, I wake up late every single day. So I miss out on most of my classes. That being said, I end up spending most of my time at the evergreen hangout point of my college, LP.

Usually I'll spend some time with my friends or have pseudo-debates with people, but for once I tried being alone at the LP. Being late for a 11:30 class (don't judge), I just went to the LP and opened up one of course books, *In Custody* by Anita Desai. After ordering a hot coffee from the canteen I sat down on one of the stone benches below a tree. Soon after a minute or two, the sounds of little gossips faded away, so did the screaming orders addressed to Dhansingh Bhaiya. As if sitting below a tree on a cold afternoon sipping on hot coffee with a book wasn't heavenly enough, one of the cutest dogs in LP showed up and sat beside my stone bench.

For almost an hour I was lost in the book, reading the description of a town named Mirpore, a name I have never heard before in my life. During my reading, I had moments of selective observation. The Dramsoc of my college was busy with some of their props (or at least that is what I figured from the little part of the noise that I could hear), I saw some people nearby clicking selfies and the usual crowd at the photocopy shop . But all this seemed so distant compared to the power of a book, even if the book was about someone from a town far away.

Funnily enough, out of all the birthdays I have celebrated at LP, out of all those random talks on the roundtables and all the forced socialization upon meeting a group, none of those moments even come close to that one hour for which I dived into a book amidst all the noise at the LP.

So the next time you're at Hansraj and need some alone time with a book, don't shy away from coming to classic Hansraj hangout point. Among all the social chaos, among all the crowd and screams and laughs, you may find unexpected

The other side of the coin

(Shifa Naseer BA(H), English II year)

You say that you know it
You are smug about it all
Confidence on yourself on the high
Yet you don't know that you still are blind
Oblivious to life's mysteries
You say that you know
But what really and by how much
You see the tears
Yet you don't feel the pain they carry
You hear the laugh
But you fail to acknowledge the sad tone to it
You see them move
Yet you fail to see their defeated walk
You see the night and praise the stars
Yet you fail to sense the deathly silence and gloom
You see the beauty as a mirage
Yet you don't see the scars

Such confidence you have
You are sure of the gold of the autumn
But you don't notice the hint of severity it invites
You appreciate all the wrong things
You are blind to the sufferings
You feel they pretend
You believe they lie
You look down on them
Who care and sympathize.
But I am sorry to say that you don't know
What it really is
Oblivious to the hurricane of emotions
The tempest of hardships.
You don't see what is clear
Laid out in plain design
A different view of life
The other side of the coin.

Her Life

(Shifa Naseer BA(H), English II year)

Looking at her dad
Eyes filled with expectations
Longing for her father to look back
To say that he loves her
To hold her in his arms
To cherish the moments they share
But he never did
She waited and kept on waiting
While she lived like a servant in her own home
Her brother went to a place called "school"
But she was not allowed to go out
Cooped up in her home
She ached for the open ground
The feel of dew as she would walk on the grass
The morning breeze caressing her
The night bringing solace
Sadly, she never saw it
Years later, she was adorned with jewels so rare
Oh how she squealed with delight
Felt that her father had finally noticed her
As she went to him
All dressed and proud
She was handed over to someone else
She didn't understand
She had done nothing wrong
But daddy was sending her away!
As the realization dawned

She writhed and screamed

Consumed by her rage
All it took was a slap across her face
Silencing her for her lifetime
Whisked away to a stranger's place
To die, to hide, to waste

Dear Love

Shifa Naseer BA(H), English II year

"Look at me, my love!"
A soothing velvety voice asked
Like the water flowing from the brooke,
Striking the stones and dying with the muddy edges.
So soft, so alluring
Love couldn't help but look up
From her window.
Into the dark night
A part of it, The voice.
Straining to hear more of the voice which seemed to give her wings
She waited.

"Dear Love! If I say I love you, would you care to believe me?"
She smiled at the dark night and nodded.
She couldn't find words; Her mobility impaired by the romance of her love.
"Oh Dear! But would you not ask me why?"
Continued the voice, almost a whisper now.
Love was too bold and trusted her love
She shook her head with certainty.

A cry of pain was heard like never before
And the voice broke out into a dirge
"Dear Love, what would I do without you?
I am yours but I feed on you too!
I am selfish and I lure you
Each time, every time!
I speak words coated with honey
You succumb to my seduction
How noble your soul is!
Even after my treachery, you hold me dear!
The people abuse you so! They accuse you!
I swear I laugh at you then
A disgusting, ugly laugh
Yet when I come to you for another heart, in exchange to my sugar coated false words of love
You give in!
I make you weak.
You give in every heart that loves
I hold it in my dark palm
And I crush it while you beg for mercy.
Do I listen to you?
No!
I rejoice in your tears, my love!
As you break, I fly off into sunrise
Another dawn breaks another heart you possess.
Dear Love! I break your hearts
Each time, every single time!
You fix them, but they never stay whole
Chips and pieces fall here and there
They cry, you cry!
I laugh! Thats what I do!
Yet you still love me unwaveringly?"

Tears trickling down her face
Love bowed her head.
If only she was allowed to speak
She would speak her heart out!
There were people with her answers but
No one was bold enough!
No one was brave enough!
No one loved enough!

The Stranger

(Muskan Nagpal, BA(H) English Ist Year)

To the stranger I met in the last shady exit I'd taken,

I think I would always remember,

Always remember how you'd told me that coffee smells absurd when you drink it alone

And that you only smell the rain after it is gone

I would always remember how you'd looked at that stain on my jacket and told me that you

loved wearing shabby clothes too

Because how could I ever forget that inside my habits you'd found a home, a home to keep

your head warm.

I remember bidding you a goodbye and on my way back home I realized how brutally fragile humans are

They either show you too much, or too little. But show you a side, they do.

They tell me to write poems about beauty, About not being fat, About scars.

They tell me to write poetry like I'm a a magician reproducing illusion. And I mean the word reproducing.

But how do I tell them that poetry doesn't exist

It is the light at the end of a tunnel,running away from you as much as you run towards it.

\You don't create poetry.

Poetry just happens. Poetry acts

And it doesn't die with you

Because even when you die my friend, maybe your name would still be creating poetry in the

games my grandchildren would play.

I remember when I was a young girl, four months younger than I am now,

I fell out of love

And how do I explain it to you that falling out of love is as beautiful as falling into love

Maybe you'd know it if I told you love is the most selfless and the selfish word to ever exist

Because everyone tells you they love you

But goddamn it marry that someone who tells you what love is.

Someone who would make you believe that you weren't just born, that you were created ,

atom by atom.

So they ask me to write poems, poems about falling out of love

But how do I tell them that falling out of love is not a disease.

That although yes, there is always a spree of disasters happening here or there , but there are no victims.

Only people suggesting cures.

My name means a smile

But how do I explain to you the identity crisis that emerged inside of me when he stopped

smiling because of me.

That he grew as indifferent to my existence as I to my relationship with him

The best part about taking someone for granted is the part of yourself you get to escape.

So how do I tell you it was just this another stranger I took for granted that taught me stranger

things about life.

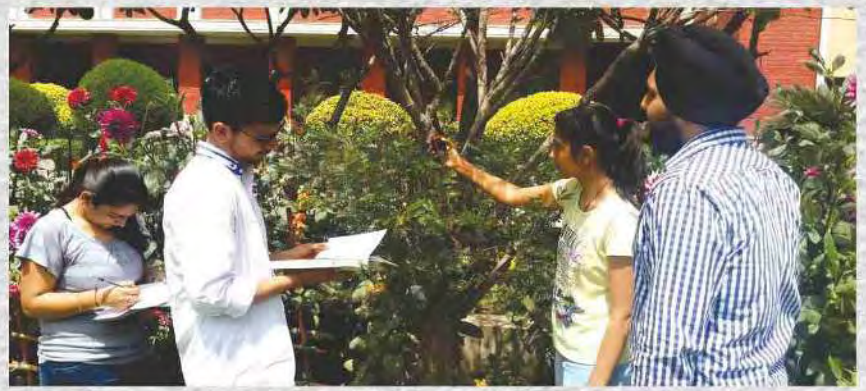

Vigilance Awareness Week - 2015
INTER COLLEGE DEBATE COMPETITION CO-HOSTED BY

Vigilance Awareness Week - 2015
INTER COLLEGE DEBATE COMPETITION CO-HOSTED BY
CONTAINER CORPORATION OF INDIA LTD.
&
HANS RAJ COLLEGE

राष्ट्रीय संगोष्ठी-2015
14-15 दिसम्बर 2015

हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
राष्ट्रीय संगोष्ठी-2015
14-15 दिसम्बर 2015

Subhash Bezawada

Swarnika Ahuja

Shayari

Riya Garg

Shraddha Pacheriwala

Delhi University Gold Medalists

— 2015-16 —

DEEPAK KUMAR JAYASWAL
M.A. HINDI

KRITIKA PANDEY
M.Sc. ANTHROPOLOGY

SAHIL GOYAL
M.Sc. PHYSICS

AKANKSHA JOSHI
M.Sc. GEOLOGY

POOJA MITTAL
B.Sc. (Hons.) MATHEMATICS

SANGEETA
B.Com (Hons.)

EKTA KHATRI
B.Sc. (Hons.) Anthropology

ABHISHEK PATEL
B.A. (Hons.) SKT

SHUBHAM SAWA
B.Sc. (Hons.) ZOOLOGY

HANSRAJ COLLEGE

— University of Delhi —

Tel.: 011-27667458, 27667747 • Fax: 011-27666338
Email: principal_hre@yahoo.com • www.hansrajcollege.co.in